Photo by Pranlal K. Patel

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

धूम्र-धूसर

प्रेषिका
सरोजिनी गुलाटी, देहली

चन्दामामा

विषय-सूची

राजा और चींटियां	...	६	अजीब सवाल	....	२९
सुनहरा हरिण	....	९	एक से बढ़ कर एक	....	३५
शब्द-वेधी	....	१३	देवदार	....	३८
क्षमा-याचना	....	२१	करके देखो तो ?	....	४०
एक सुलभ व्यायाम	....	२४	धर्म - युद्ध	....	४१
दैत्य का बगीचा	....	२५	एकाकी वीर	....	४६

इनके अलावा फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता, मन बहलाने वाली पहेलियाँ, सुन्दर चित्र और कई प्रकार के तमाशे हैं।

चन्दामामा

संचालक :: चक्रपाणी

इस अंक से हमारा नया धारावाही 'शब्द-वेधी' शुरू होता है। इस के अलावा हम ने इस अंक से फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता के कूपन उठा देने का निश्चय किया है। आगे से पाठक यथा-प्रकार पोस्ट-कार्ड पर ही परिचयोक्तियाँ लिख कर भेज सकेंगे। हमने कूपन के बारे में पाठकों से बराबर शिकायत ही पाई है। इसी से हमें ऐसा निश्चय करना पड़ा। पाठकों की चिट्ठियों से हमें पता चलता है कि जातक-कथाओं के प्रकाशन से उनको बहुत प्रसन्नता हुई है। इसलिए हम उसे आगे भी जारी रखना चाहते हैं। बहुत से पाठक हमें बार-बार लिख रहे हैं कि आप पहेली के लिए कोई पुरस्कार क्यों नहीं रखते! इस बारे में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि कई कारणों से हम इसे उचित नहीं समझते। आशा है, पाठक बुरा नहीं मानेंगे।

वर्ष 4 :: जुलाई 1953 :: अंक 11

राजा और चींटियाँ

किसी समय था राजा एक :
जिस से डरता था हर एक।
दुष्टों का वह था जमराज,
मगर सज्जनों का सरताज।

बड़ा चतुर वह था जिस से,
छिपा न था कुछ भी उससे।
पशु-पक्षी की बोली जान
लेता, था इतना विद्वान।

एक रोज़ अपनी रानी
सहित सफ़र उसने ठानी;
दल-बल सहित राह पकड़ी;
तपा रही थी धूप कड़ी।

इतने में उसने देखी,
एक कतार चींटियों की।
जो आपस में बोल रहीं—
'अब प्राणों की आस नहीं।

सपरिवार राजा आते,
हम सब अब कुचले जाते।
उनको क्या? वे राजोत्तम;
और तुच्छ कीड़े हैं हम।'

दीनों की रक्षा करना
राज-धर्म सच्चा, वरना
सब चौपट हो जाएगा !
बस, अँधेर मच जाएगा !'

कह उसने फेरा घोड़ा ;
झट सब ने निज रुख मोड़ा ।
बाल बाल चींटियाँ बचीं,
वरना होती रार मची !

सुन संवाद चींटियों का
बुद्धिमान राजा चौंका ।
रानी से बोला झट वह,
क्या क्या चींटियाँ रहीं कह ।

वह बोली—'मजाल इतनी ?
नन्ही सी जानें कितनी ?
राजा को दें दोष रहीं !
झट क्यों देते कुचल नहीं ?'

उसकी एक न सुनी मगर,
कोमल था राजा का उर ।
बोला वह झट मुसका कर—
'तेरा कहना सत्य, मगर

मुख-चित्र

मालिनी-नदी के तीर पर बहुत ही सुन्दर एक घना जङ्गल था। उस जङ्गल में ऊँचे ऊँचे तरह तरह के पेड़, कँटीली झाड़ियाँ, जङ्गली फूलों के पौधे वगैरह भरे हुए थे। जगह जगह झरनों का कल-कल-नाद गूँजता रहता था। उस जङ्गल में तरह तरह के जीव-जन्तु रहते थे। लेकिन सब से अजीब बात यह थी कि वे सभी आपस में बहुत हिल-मिल कर रहते थे।

उसी जङ्गल में कण्वमुनि का आश्रम भी था। उस आश्रम में हमेशा एक बच्चा खेलता दिखाई देता था। दिन दूने रात चौगुने बढ़ने वाला वह तेजस्वी बालक तरह तरह के खेल खेला करता था। लेकिन वे खेल मामूली बच्चों के से खेल नहीं थे। वह बालक था नन्हा सा; मगर बड़ा ही शक्तिशाली था। उछल कर मदमाते हाथियों के कुंभस्थल पर चढ़ जाता और उनकी सूँड़ पकड़ कर मरोड़ देता। बस, वे दर्द से चिंघाड़ने लगते और बिना अंकुश के ही उसके गुलाम बन जाते। शेरों, बाघों को पकड़ लाता और आश्रम के पेड़ों से बाँध देता, मानों कोई पालतू जानवर हो। इतना ही नहीं, उन पर चढ़ कर सवारी भी करता। इस तरह जङ्गल के खूँखार जानवर सभी उससे बहुत डरते थे। इसीसे आश्रम-वासी उसे 'सर्वदमन' कह कर पुकारते थे।

इसी सर्वदमन की माता शकुन्तला थी जिसे मुनि कण्व ने बचपन से ही पाला था। इसके पिता थे चक्रवर्ती दुष्यन्त, जिन्होंने मृगया खेलने आकर कण्वाश्रम में ही शकुन्तला को देखा और मुग्ध होकर गन्धर्व-विवाह कर लिया। दुष्यन्त विश्व-विजयी वीर थे। सर्वदमन उनसे भी बढ़ गया। एक बार आकाशवाणी ने कहा कि सर्वदमन के लिए 'भरत' का नाम उपयुक्त होगा। तब से उसका नाम 'भरत' पड़ गया। दुष्यन्त के बाद भरत ही गद्दी पर बैठा। उसने सारे संसार को जीत कर अनेकों याग-यज्ञ किए और बहुत यश कमाया। उसी के नाम से हमारे देश भी 'भारतवर्ष' कहलाने लगा।

सुनहरा हरिण

ब्रह्मदत्त जिन दिनों वाराणसी नगर पर राज करता था, उस समय एक बार बोधिसत्व ने हरिण के रूप में जन्म लिया और वह भी सुनहरे हरिण के रूप में। उस हरिण की आँखें नीलमों की तरह चमकती रहती थीं। उसके खुर चाँदी के थे। उसका मुँह बिलकुल लाख की तरह लाल था। यह सुनहरा हरिण एक बरगद के पेड़ के नीचे रहता था और पाँच सौ हरिणों के झुंड का अगुवा था।

वहीं नज़दीक ही एक पीपल का पेड़ भी था जिस के नीचे और एक हरिण रहता था। वह भी बरगद वाले हरिण की तरह ही बहुत सुंदर और सुनहरा था। वह भी पाँच सौ हरिणों के एक झुंड का अगुआ था। उसे पीपल वाला हरिण कह कर पुकारते थे।

उन दिनों काशी-राज ब्रह्मदत्त को मृगया का व्यसन लगा रहता था। वह रोज अपने परिजनों के साथ जंगल जाया करता था। इस से राज का काम-काज सब चौपट हो जाता था और लोगों को बहुत कष्ट होता था। आखिर मुख्य मुख्य दरबारियों और मन्त्रियों ने एक जगह जमा होकर सलाह-मशविरा किया और तय किया—'इस राजा के मृगया-व्यसन के कारण हमारा काम-धाम सब चौपट हो रहा है। इसलिए हमें चाहिए कि बहुत से हरिणों को लाकर राज-वन में छोड़ दें जिस से राजा को मृगयार्थ जङ्गल जाने की जरूरत न पड़े।' यह उपाय सब को पसंद आ गया।

अब बहुत से लोग जङ्गल जाने, हरिणों को पकड़ लाने और राज-वन में छोड़ने लगे। ऐसे लोगों को इनाम भी दिया जाने लगा। हरिण हजारों की तादाद में पकड़े गए, जिन में पीपल और बरगद वाले हरिण भी थे।

दिनेश

इस तरह जब राज-वन हरिणों से भर गया तो कुछ सम्मान्य व्यक्तियों ने राजा के पास जाकर विनती की—'हुजूर! अब आपको मृग-मांस की किसी दिन कमी न होगी।'

उनकी बातें सुन कर राजा को बहुत खुशी हुई। राज-वन जाकर देखा तो वहाँ बेशुमार हरिण स्वच्छन्द विचर रहे थे। खास कर बरगद और पीपल वाले दोनों सुनहरे हरिणों को देख कर उसे बहुत मोद हुआ और उसने आज्ञा दी—'इन दोनों हरिणों को कोई न मारे!'

कुछ दिन तक राज-वन में शिकार खेल कर राजा का मन ऊब गया। जहाँ देखो वहीं हरिण थे। उनको मारना बच्चे का काम था। इस शिकार में कोई मज़ा न था। इसलिए अब राजा का रसोइया ही आकर, रोज़ एक एक हरिण को मार कर ले जाने लगा।

हरिण सभी रसोइये को पहचान गए थे और देखते ही भागने लगते थे। इस से रसोइए को तीरों की बौछार करनी पड़ती थी जिस से रोज़ एक से ज्यादा ही हरिण मरते या घायल होते थे। हरिणों की जान नाहक जा रही थी। यह सब देख कर बरगद वाले हरिण ने (याने बोधिसत्व ने) एक दिन पीपल वाले हरिण को बुला कर कहा—'मित्र! रसोइए के यहाँ आने से नाहक ही भगदड़ मच जाती है और कई हरिणों की जान जाती है। रोज़ एक हरिण को किसी न किसी तरह मरना ही है। फिर सब की बारी क्यों न बना ली जाय जिस से हर रोज एक हरिण पाक-शाला को जाकर वध-शिला पर अपना सिर रख दे। इस से वृथा प्राण-हानि न होगी और रोज़ एक ही हरिण मरेगा।'

उसकी बात पीपल वाले हरिण ने भी मान ली। दोनों हरिणों ने अन्य सभी हरिणों को यह निश्चय बता दिया। हरिण सभी उसी निश्चय के अनुसार चलने लगे जिस से बहुत से हरिणों की जान बच गई।

हां, तो एक दिन पीपल वाले हरिण के झुंड में एक गाभिन हरिणी की बारी आई। तब उसने अपने झुंड के अगुवा के पास जाकर कहा—'मैं गाभिन हूँ। कुछ ही दिनों में बच्चे देने वाली हूँ। मैं मरने से नहीं डरती। लेकिन अभी मरने से बेकसूर बच्चों की जान चली जायगी। इसलिए अभी मेरी बारी हटा कर किसी दूसरे को भेजिए।'

तब पीपल वाला हरिण निर्दय स्वर में बोला—'नहीं; ऐसा तो नहीं हो सकता। तुम्हारी बारी है तो तुम्हीं को जाना होगा।'

तब हरिणी ने बरगद वाले हरिण के (याने बोधिसत्व के) पास जाकर अपना दुखड़ा रोया। बरगद वाले हरिण ने कहा—'तुम डरो नहीं! मैं तुम्हारे बदले जान देने को तैयार हूँ!' उसने उसे तसल्ली देकर भेज दिया और पाक-शाला में जाकर वध्य-शिला पर अपना शीस रख दिया।

जब रसोइए ने आकर उसे देखा तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने सोचा—'यह क्या! आज यह सुनहरा हरिण कैसे आ गया? राजा ने आज्ञा दी थी कि इन्हें कोई न मारे!' यह सोच कर वह उलटे पांव लौट गया और जाकर राजा को सारा हाल सुना दिया। तुरंत राजा अपने दरबारियों के साथ वहां आया। 'हे हरिण-राज! हम ने तो आज्ञा दी थी कि तुम्हें न मारा जाय। फिर तुम क्यों नाहक खुद ही जान देने आए हो?' उसने पूछा।

'राजन्! इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं!' यह कह कर बरगद वाले हरिण ने गाभिन हरिणी की पूरी राम-कहानी कह सुनाई। सारी कहानी सुनने के बाद राजा ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और बोला—'हे हरिण-राज! मैंने तुम्हारी जैसी उदारता और दया-शीलता मनुष्यों में भी कहीं नहीं देखी। तुम्हें देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। जाओ, हम तुम्हें और उस गाभिन हरिणी को भी छोड़ देते हैं।'

'किन्तु राजन्! सिर्फ हम दोनों की जान बचाने से क्या होता है? अन्य हरिणों का क्या हाल होगा?' बरगद वाले हरिण ने पूछा। 'अच्छा, आज से हम उन्हें भी छोड़ देते हैं!' राजा ने उदार-भावसे कहा।

'फिर भी कर्तव्य पूरा नहीं होता। जङ्गल में सिर्फ हरिण ही नहीं रहते! वहाँ बहुत से और भी जीव-जन्तु रहते हैं। हरिणों की तरह उनको भी अपनी जान प्यारी होती है! उनका क्या हाल होगा?' बरगद वाला हरिण बोला। 'अच्छा! हम उन सभी को अभय-दान देते हैं!' राजा ने कहा।

'किन्तु देव! जङ्गल में पेड़ों पर पक्षी बसते हैं और सर-सरिताओं में जलचर बसते हैं। उनको जान भी उतनी ही महँगी है जितनी हम सब की। क्या आप उनकी रक्षा का वचन नहीं देंगे?' बरगद वाले हरिण ने (याने बोधिसत्व ने) पूछा।

''तुम्हारा कहना ठीक है। हम आज से सब तरह के जीव-धारियों को अभय देते हैं। अब प्राणि-मात्र निश्शंक होकर जिएँ!' राजा ने करुणा से द्रवित होकर कहा।

इस तरह उस राजा के हृदय में करुणा की ज्योत जगा कर, सभी जीवों की ओर से अभय का वचन लेकर, वह बरगद वाला हरिण वन को लौट गया। वाराणसी राज्य में सब प्रकार की हिंसा बन्द हो गई और सभी हरिणों को छुटकारा मिल गया।
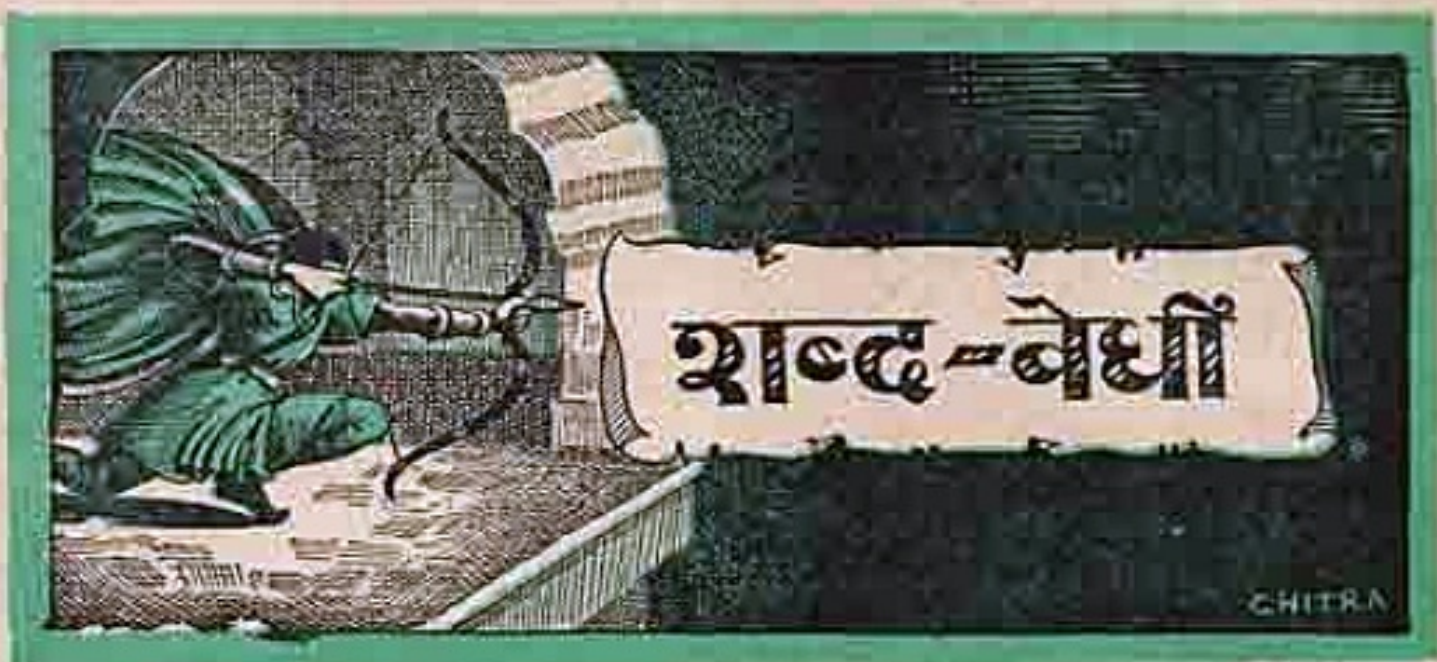
[इतने में न जाने कहाँ से एक तीर भिनाता हुआ उड़ा और सीधे आकर [illegible] गज़ादीन के कलेजे में चुभ गया। देखते ही देखते वह धरती पर लोटने लगा। विजयसिंह ने, जिससे उसकी पीड़ा देखी नहीं गई, धीरे से वह तीर बाहर निकाल लिया। गज़ादीन एक बार 'हाय, राम!' कह कर सदा के लिए चुप हो गए। विजयसिंह ने हाथ में के तीर को उलट-पलट कर गौर से देखा और कहा—'तीर तो बड़ा अजीब है।' उस तीर पर छोटे छोटे अक्षरों में खुदा हुआ था—"गज़ादीन को 'शब्द-वेधी' का पुरस्कार!" इस शब्द-वेधी की यह विचित्र कहानी सैकड़ों साल पुरानी है।]

विंध्याचल के आस-पास का हिस्सा, जिसे आज मध्य-प्रदेश कहा जाता है, उन दिनों छोटे-मोटे हिस्सों में बँटा हुआ था। हिंदू और बौद्ध साम्राज्य विलुप्त हो गए थे। लेकिन मुगलों का पदार्पण अभी नहीं हुआ था। बड़ा मुश्किल जमाना था वह! छोटे-मोटे सामन्त, जिन्हें किसी का डर न रह गया था, आपस में लड़ते रहते थे। सारे देश में अराजकता और उच्छृङ्खलता छाई हुई थी। राजाओं के आपसी झगड़ों के मारे प्रजा के प्राण मुश्किल में फँसे रहते थे। फिर छोटे जमींदारों और जागीरदारों का तो कहना ही क्या! हरेक की अपनी एक छोटी सी सेना रहती थी और उसकी मदद से वह लूट-मार मचाता रहता था। दुर्बल और निर्धन लोगों को तो कोई पूछने वाला ही न था।

हाँ, हमारी कहानी जिस समय से शुरू होती है उस समय एक शाम को कोसलपुर की सीमा पर के गिरिदुर्ग में युद्ध का डंका बजने लगा। गिरिदुर्ग था तो कोसलपुर रियासत में ही, मगर वह बीसलपूर को भी छूता था। दुर्ग के स्वामी का नाम था भीमसिंह। फिलहाल वे सैन्य-सहित किले के बाहर राम-नगर गए हुए थे। उनकी गैरहाजिरी में किला उनके पुरोहित और दिली दोस्त सोमशर्मा के सिपुर्द था।

विंध्य के आस-पास की रियासतों में उन दिनों दो ही बड़ी कही जा सकती थीं। एक का नाम था बीसलपूर, दूसरे का कोसलपूर। इन दोनों रियासतों के स्वामी सूर्यवंशी राजा थे। उनके परदादा सगे भाई थे। फिर कोई घरेलू झगड़ा उठ खड़ा हुआ और बीसलपूर का राज्य दो हिस्सों में बँट गया। इस तरह कोसलपूर राज्य का प्रादुर्भाव हुआ।

तभी से इन दोनों रियासतों के स्वामियों में जानी दुश्मनी चलने लगी। कौन नहीं जानता कि भाई-भाई का झगड़ा कितना बुरा होता है!

डंके की आवाज़ सुनते ही, जो मर्द रामनगर नहीं गए और किले में ही रह गए थे, वे सभी अपना अपना काम-धाम छोड़ कर दौड़े और कचहरी के पास जमा हो गए। वहाँ बीस-पचीस साल का एक हथियारबन्द, हट्टा-कट्टा नौजवान, घोड़े पर सवार खड़ा था। उसी का नाम विजयसिंह था। उसे भीमसिंह ने बचपन से पाल रखा था।

किले के रहने वाले जो वहाँ जमा हो गए थे, एक दूसरे से पूछ रहे थे कि बात क्या है? यह देख कर उस नौजवान ने बताया कि 'कोसलपूर और बीसलपूर

राज्यों के बीच फिर से लड़ाई छिड़ने वाली है। इसलिए भीमसिंहजी का आदेश है कि जितने सैनिक जमा किए जा सकें, रामनगर भेजे जायें।' उस नौजवान ने यह भी बताया कि सिपाहियों के उस जत्थे का सरदार रामसिंह होगा और सोमशर्मांजी स्वयं आकर इस विषय में आज्ञा देंगे।

यह खबर सुन कर लोग आपस में तरह तरह की बातें करने लगे। उन बातों से साफ़ जाहिर होता था कि दुर्ग के स्वामी भीमसिंह को कोई नहीं चाहता। इतने में घोड़े पर सवार रामसिंह भी वहाँ आया। आते ही उसने कहा—'तैयार हो जाओ सब लोग! दिन रहते चल देना है यहाँ से!" रामसिंह दुर्ग के स्वामी भीमसिंह का दाहिना हाथ था। उसके हुक्म के मुताबिक लोग जहाँ के तहाँ तैयारी करने लगे। रामसिंह ने एक आदमी को बुला कर पूछा—'बूढ़ा गङ्गादीन कहाँ गया? दिखाई नहीं देता!'

'शायद खेत गया होगा!' उस आदमी ने जवाब दिया। बूढ़े गङ्गादीन का खेत किले के बाहर था। विजयसिंह और रामसिंह ने अपने घोड़े उस ओर दौड़ा दिए।

बूढ़ा गङ्गादीन अपने खेत में काम करते हुए कुछ गुनगुना रहा था। इन दोनों के आने की आहट उसने शायद नहीं सुनी; सिर झुकाए उसी तरह काम में लगा रहा।

'ओ भैया गंगू! बुलावा आया है तुम्हारे लिए। सोमशर्मांजी का हुक्म है कि किले में आकर सिपाहियों के अगुवा बनो!' रामसिंह ने कहा। 'क्या बात है? तुम तो यहीं हो न!' गङ्गादीन ने हँस कर कहा। 'नहीं, वे यहाँ नहीं रहेंगे! किले में जितने आदमी हैं, सबको जमा करके रामनगर ले जाना है इन्हें! यह भीमसिंहजी का हुक्म है!' विजय ने कहा।

'फिर मैं यहाँ अगुवा बनूँगा किसका ?' गङ्गादीन ने पूछा। 'छः सिपाहियों के साथ सोलशर्माजी किले में ही रहेंगे !' रामसिंह ने जवाब दिया। लेकिन गङ्गादीन ने उसका जवाब नहीं सुना। वह जङ्गल की तरफ़ गौर लगा कर देख रहा था। 'क्या देख रहे हो इतने गौर से ?' रामसिंह ने पूछा। 'चिड़ियों को देख रहा हूँ।' गङ्गादीन ने कहा। वहाँ से दो सौ गज की दूरी पर पेड़ों के एक घने झुंड के ऊपर बहुत-सी चिड़ियाँ तितर-बितर मँडराती चीख रही थीं। 'अरे! चिड़ियों को क्या देख रहे हो ?' रामसिंह ने कहा।

'यही तो नादानी है। चिड़ियाँ जङ्गल में पहरा देती हैं। ज्यों ही कोई अजनबी जङ्गल में घुसा कि ये चीखने-चिल्लाने लगती हैं। उन्हें देखने से हमें सब पता लग जाता है। मान लो कि उस पेड़ों के झुरमुट में दुश्मन छिपे हुए हैं। तुम्हें इसका पता कैसे लगे ?' गङ्गादीन ने कहा।

'दुश्मन कहाँ से आयेंगे यहाँ ? रामनगर में तो अपनी ही फ़ौज है !' रामसिंह ने कहा।

'अरे! पागल! भीमसिंह और उसके नौकरों पर वार करने के लिए दुश्मन बाहर ही से क्यों आएँ ? आस-पास में ऐसे कौन से लोग हैं जो हम से नफ़रत न करते हों ?' गङ्गादीन ने पूछा।

रामसिंह के मुँह से थोड़ी देर तक बात न निकली। वह जानता था कि गङ्गादीन का कहना सच है। 'बस, बस, चलो, चलें! सोलशर्माजी गुस्सा होते होंगे।' उसने कहा।

इतने में न जाने, कहाँ से भिन्नाता हुआ एक तीर आया और बूढ़े गंगू की छाती में चुभ गया। वह बात की बात में जमीन पर लोटने लगा। रामसिंह छलांग

मार कर नज़दीक ही एक चट्टान की ओट में जाकर छिप गया। विजयसिंह कमान पर तीर चढ़ा कर जङ्गल की तरफ़ देखने लगा। लेकिन जङ्गल बिलकुल स्तब्ध था। कहीं एक पत्ती भी न हिल रही थी।

रामसिंह और विजयसिंह दर्द से तड़पते हुए गंगू के पास गए। विजयसिंह ने, जिस से उसकी पीड़ा देखी नहीं गई, तीर बाहर निकाल डाला। बेचारे गंगू ने एक बार 'हाय, राम!' कह कर दम तोड़ दिया।

विजयसिंह ने हाथ में के तीर को उलट-पलट कर देखा और कहा—'तीर तो बड़ा अजीब है।' 'देखूँ मैं भी ज़रा उसे!' यह कह कर रामसिंह ने तीर हाथ में लेना चाहा। लेकिन विजय ने मना किया और हाथ से लहू पोंछ कर उसे दिखाया। उस तीर पर छोटे छोटे अक्षरों में खुदा था—'गंगू को शब्द-वेधी का पुरस्कार।' 'शब्द-वेधी? शब्द-वेधी कौन? नाम तो झूठा मालूम होता है! अच्छा, अब यहाँ बैठे रहने से क्या फ़ायदा? गंगू तो रहा नहीं। चलो, उसकी लाश ही को ले चला जाय।' रामसिंह ने कहा।

दोनों मिल कर गंगू की लाश को उठा कर उसके घर की ओर ले चले, जो नज़दीक ही था। तुरन्त सोमशर्माजी को खबर भेज दी गई। थोड़ी ही देर में वे 'क्यों भाई! क्या हुआ?' कहते हुए आए। 'और क्या होगा! गंगू मारा गया।' रामसिंह ने कहा।

यह खबर सुनते ही सोमशर्माजी के माथे से पसीना छूट चला। मुँह सफ़ेद फ़क हो गया। पाँव थर थर काँपने लगे। वे नज़दीक के आसन पर थके-से बैठ गए। 'बात क्या हुई?' अन्त में उन्होंने भराए हुए गले से पूछा। तब विजय ने चुपके से उन्हें वह तीर ले जाकर दिखाया।

'शब्द-वेधी? कौन है वह दुश्मन जो शब्द-वेधी के नाम से यह धृष्टता कर रहा है? हमारे दुश्मन तो कम नहीं हैं। लेकिन इतनी मजाल किसकी हुई? कौन है वह? बाबूसिंह? नहीं नहीं; परवार होगा? नहीं; तो फिर कौन हो सकता है?' सोमशर्माजी कहने लगे। 'क्यों? चंडीदास क्यों नहीं?' रामसिंह ने कहा।

'नहीं; ऐसे आदमी इतना साहस नहीं कर सकते! शीघ्र ही युद्ध छिड़ने वाला है। जरूर किसी बीसलपुरी की करतूत है यह!' सोमशर्मा ने कहा। 'वाह, आप भी क्या कहते हैं शर्माजी! क्या आप नहीं जानते कि भीमसिंहजी का कोई अपना पक्ष नहीं है? जिस पक्ष की जीत होती है वही उनका अपना पक्ष है? भीमसिंहजी को दुश्मनों की कौन-सी कमी! कौन ऐसा घोर पाप है जो उन्होंने नहीं किया! उनके मारे कितने घर उजड़ नहीं गए?' यों कहते कहते उत्तेजित रामसिंह सहसा रुक गया।

क्योंकि सोमशर्माजी धीमे से कहने लगे थे—'भैया! तुम्हारी जबान बहुत तेज चलती है। उसे काबू में रखो! पीछे पछताने से कोई फायदा नहीं।' फिर उन्होंने बात बदल कर कहा—'गंगू अब नहीं रहा। तुम्हें भेजने से काम नहीं चलेगा। तुम्हें यहीं रहना होगा। ज़माना अच्छा नहीं है।'

फिर तीनों बाहर आए और अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर कचहरी की ओर चले। वहाँ जो लोग जमा थे उन को देख कर सोमशर्माजी की जरा जान में जान आई। 'कोई बात नहीं! इन जवाँ-मर्दों को देख कर भीमसिंहजी जरूर खुश होंगे!' उन्होंने सोचा। इतने में रामसिंह ने, न जाने किसे देखा कि चौंक पड़ा और बोला—'वह कौन है?'

एक आदमी कचहरी के पीछे से भाग रहा था। 'पकड़ लो उसे! देखते क्या हो!' रामसिंह चिल्लाया और अपना घोड़ा दौड़ाने लगा। बहुत से लोग यह देख कर उसके पीछे पीछे दौड़ने लगे। लेकिन सब से होशियारी का काम किया विजय ने। उसने धनुष पर तीर चढ़ा कर छोड़ दिया। लेकिन निशाना ठीक नहीं था। तीर उस अजनबी के घोड़े को छूता हुआ चला गया।

लेकिन थी उसकी तकदीर अच्छी! सब के देखते देखते वह जङ्गल में घुस गया और आँखों से ओझल हो गया। पीछा करने वाले निराश होकर लौटने लगे। इतने में नारायण, सोमशर्माजी का एक नौकर, एक पुर्जा ले आया और कहने लगा—'लीजिए; देखिए तो यह क्या है!' उस पर एक अजीब गाना लिखा हुआ था। उसे सोमशर्माजी पढ़ने लगे—

'मेरे पास चार हैं साँके-चोखे बाण!
ये हर लेंगे झट जल्द दुष्टों के प्राण!
एक बाण जो लगा नगर पर, गगनदीन।
मिला दुष्ट को दण्ड, बैर निज कर प्राचीन।
रामसिंह को हेतु छिपा रक्खा इक बाण।
सोननगर को जला दिया उसने शैतान।

दुष्ट सोमशर्मा के हित रचता इक जाल।
अमरसिंह को भी उसमें ही [illegible] जाल।
भीमसिंह के हेतु बना अब अंतिम पाश!
बचा नहीं सकता है कोई उसके प्राण।
दुष्टो! याद रखो अब अपनी सब करतूत।
वह देखते हैं सुन [illegible] की बात, [illegible]।

[illegible]

[illegible] और [illegible]।

यह पढ़ कर सोमशर्मा चिढ़ने लगा—'हाय! हाय! देखो तो, किस तरह सफेद झूठ बोल रहा है। कहता है कि मैंने अमरसिंह को मरवा डाला। भला इससे बढ़ कर और कौन सा झूठ हो सकता है!' वह कहने लगा। तब रामसिंह ने नजदीक जाकर उसके कान में कुछ फुसफुसा दिया। तुरन्त सोमशर्मा का मुँह बन्द हो गया। वह घबराई नजरों से विजयसिंह की तरफ देखने लगा। इसका कारण विजय को भी मालूम था। क्योंकि उसी के पिता का नाम अमरसिंह था। उसकी हत्या का सच्चा हाल तो कोई नहीं जानता था, मगर यह सब को मालूम था कि किसी ने उसके पिता का गिरदुर्ग में ही खून कर डाला था।

उस खून के बारे में उस समय बहुत चीख-पुकार मची थी। कुछ पूछ-ताछ भी की गई थी। लेकिन ज़माना अच्छा नहीं था। इसलिए न अपराधी ही पकड़ा गया और न अपराध का दण्ड ही दिया जा सका।

आखिर सोमशर्माजी ने रामसिंह की सलाह लेकर सब बातें एक चिट्ठी में लिखीं और विजय के हाथ में रख दी। फिर उसे इन सैनिकों को साथ लेकर भीमसिंहजी के पास जाने का हुक्म दिया। जब कहना-सुनना सब हो गया तो विजयसिंह चिट्ठी कमरबन्द में खोंस कर उन सैनिकों के साथ रामनगर को रवाना हुआ।

[अभी और है।]

क्षमा-याचना

किशनराम एक छोटा सा व्यापारी था। गङ्गा किनारे उसकी एक छोटी-सी धान कूटने की मिल थी। वह मिल तो थी छोटी-सी; मगर लोग जानते थे कि किशनराम बहुत ईमानदार आदमी है। इसलिए सब-के-सब उसी के पास धान कुटाने जाते थे।

जितना धान कूटने के लिए आता था उसका बीसवाँ हिस्सा किशनराम कुटाई की मजूरी के रूप में ले लेता था। उसके पास आने वालों में ज्यादातर गरीब लोग ही होते थे। उनमें एक ही ऐसा जमींदार था जो अपने धान के बोरे गाड़ियों में लदवा कर हर पन्द्रह दिन में एक बार भेजा करता था।

एक दिन उस जमींदार के यहाँ से धान के कुछ बोरे गाड़ी में लद कर आए। जमींदार के नौकरों ने गाड़ी पर से बोरे उतारे और मिल के अन्दर डाल कर, वहाँ से किसी काम पर चले गए। अपने सामने पड़े हुए उन बोरों को देख कर किशनराम ने सोचा—'दस बोरे यहाँ पड़े हुए हैं। आधा बोरा धान तो मजूरी के तौर पर मुझे मिलेगा ही। क्या हुआ यदि मैंने जरा ज्यादा ही धान ले लिया। संसार में कौन ऐसा आदमी पैदा हुआ होगा जिसने कभी न कभी कोई बेईमानी न की हो!' यह सोच कर उसने अपनी मजूरी से जरा ज्यादा ही धान निकाल लिया और उसे एक जगह ले जाकर छिपा दिया।

उसने इस तरह थोड़ी बेईमानी तो की, मगर तब से उसका दिल बड़ा बेचैन रहने लगा। कुछ दिन तक तो वह बहुत ही अनमना सा रहा और न जाने, क्या क्या सोचता रहा। अन्त में एक दिन जब एक गरीबिन अपने धान का बोरा वहाँ छोड़ गई तो उसे देख कर किशनराम ने अपने मन

कुमारी कृष्णा

में सोचा—' मैंने उस समय बेईमानी तो की थी, मगर कोई बात नहीं। चोरी से मैंने जितना धान लिया था, उतना इस बोरे में रख दूँगा। इस तरह जो पुण्य मिलेगा उससे मेरा पहला पाप दूर हो जाएगा।' यह सोच कर उसने वैसा ही कर दिया।

उसके बाद पन्द्रह दिन और बीत गए। फिर एक बार जमींदार के बोरे आए। किशनराम ने, जिसे चोरी का चसका लग गया था, फिर एक बार बेईमानी की और उस पाप का बदला फिर पहले की ही तरह पुण्य करके चुकाया। इस तरह पाप-पुण्य करते दिन बीतते गए।

इस तरह बेईमानी का पैसा ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों त्यों किशनराम के मन की शान्ति भी मिटती गई। कई दफे उसने सोचा—' चलूँ, उस जमींदार के पास! अपना कसूर कबूल करके माफी माँग लूँ।' लेकिन इस में उसकी हेटी जो होती थी!

आखिर बहुत सोचने-विचारने के बाद किशनराम ने तै किया—' जमींदार साहब को मेरे ऊपर कोई शक नहीं है। वे अब भी धान मेरे ही यहाँ भेजते हैं। गलती सुधार लेने का मौका चूक नहीं गया। अब एक काम करूँगा मैं। अपनी मजूरी पूरी नहीं लूँगा। इस तरह मैंने उनका जितना माल खाया है उतना भर दूँगा। बस, मेरा पाप कट जाएगा।'

यह तै कर उसने हर बार ऐसा ही करना शुरू किया। तब से उसके मन को जरा चैन मिलने लगा।

जमींदार साहब के नौकर धान हमेशा तौल कर ही भेजते थे। और जब चावल घर आता तो उसे भी तौल लेते थे। कई बार उन्होंने जमींदार साहब से शिकायत की कि चावल कम आया है। लेकिन जमींदार साहब ने उनकी शिकायतों पर कोई ध्यान

नहीं दिया। उन्होंने कहा—'किशनराम अपना आदमी है और बहुत ईमानदार है। वह कभी ऐसा नहीं करेगा।' उनके मन में जरा भी शक न हुआ।

फिर एक बार जब नौकरों ने कहा कि चावल ज्यादा आया है तो वे हँस कर बोले—'मैंने तो पहले ही कहा था न कि वह बहुत पुराना आदमी है और बहुत ईमानदार है।'

इधर किशनराम मन ही मन बहुत खुश हो रहा था कि उसकी साध पूरी हो गई। यहाँ तक कि उसने एक बार अपनी मजूरी बिलकुल नहीं ली।

जब जमींदार साहब के नौकरों ने यह बात उन्हें कही तो वे तुरन्त उठे और किशनराम के यहाँ जा पहुँचे। उनको देख कर किशनराम हक्का-बक्का रह गया। उसने सोचा—'अब मेरा सारा भेद खुल गया है।' 'क्यों भई! हम ने सुना है कि तुम तो अपनी मजूरी लेते ही नहीं आजकल! क्यों, क्या बात है? इस तरह खैरात करने से तुम्हें घाटा नहीं होगा!' जमींदार साहब बोले।

उनके वचन सुन कर किशनराम के अचरज का ठिकाना न रहा।

वह रोते हुए जमींदार साहब के पैरों पर गिर पड़ा और उन से सच्ची बात बता दी। फिर बड़े दीन स्वर में उन से माफी माँगी।

जमींदार साहब को उस पर बहुत तरस आया। उन्होंने उसे दिल से माफ कर दिया और वचन दिया कि यह भेद वे किसी पर नहीं खोलेंगे।

घर लौट कर उन्होंने नौकरों से कहा—'बेचारा किशनराम बड़ा भुलक्कड़ है। अपनी मजूरी लेना ही भूल गया था। उसे याद दिला आया कि फिर कभी ऐसा नहीं करना!' उस दिन से नौकरों को भी कभी शिकायत करने का मौका न मिला।

एक सुलभ व्यायाम !

★

कुछ ऐसे व्यायाम हैं जो करने में बहुत आसान हैं। इनके अभ्यास के लिए विशेष साधनों की भी आवश्यकता नहीं। ऐसे ही एक व्यायाम के बारे में हम यहाँ बताने जा रहे हैं। इस का अभ्यास करने से बदन की ताकत तो बढ़ेगी ही; साथ ही करने में मज़ा भी आएगा। इस व्यायाम के अभ्यास के लिए तुम अपने मित्रों को भी प्रोत्साहित कर सकते हो।

करीब डेढ़ फुट लम्बी, एक गोल लकड़ी (जैसी चित्र में दिखाई गई है।) ले लो। यह लकड़ी सीधी और चिकनी हो तो बहुत अच्छा।

अब दोनों कदम सटा कर रखो! दोनों हाथ सीधे पसार कर (जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।) लकड़ी पकड़ लो! अब दोनों पैर उठा कर लकड़ी के ऊपर से उछल जाओ! इस तरह उछल जाने के लिए अभ्यास की जरूरत है। इस लिए इस व्यायाम का अभ्यास पहले हरी-भरी मुलायम घास या किसी मुलायम गद्दे पर करना चाहिए जिस से चोट नहीं आए।

२. सुनो, अब हम और एक सुलभ व्यायाम बताते हैं। उसी लकड़ी को अब पीठ के पीछे रख लो! दोनों हाथों को इस तरह मोड़ लो कि लकड़ी पीठ और हाथों के बीच फँस जाए। (बगल का चित्र देखो!) अब सीधे खड़े होकर चलने की कोशिश करो। इस व्यायाम से तुम्हें सिपाही की तरह तन कर शान से चलने की आदत पड़ जायगी। झुक कर बूढ़ों की तरह चलने की आदत अपने आप छूट जायगी।

किसी दैत्य के एक बगीचा था। बहुत से लड़के आकर उस में खेला करते थे। तरह तरह के पेड़-पौधों से भरा हुआ वह बगीचा बहुत सुन्दर लगता था। पेड़ों की डालों पर चिड़ियाँ चहचहाती रहती थीं। हरी-भरी घास इस तरह बिछी हुई थी जैसे किसी ने मुलायम कालीन बिछाई हो। उस बगीचे में खेल कर बच्चे बहुत आनंद पाते थे।

एक दिन दैत्य घर लौटा। सात बरसों तक वह एक मित्र के घर रहा था। अब जो लौटा तो लड़कों को अपने बगीचे में खेलते देख कर बहुत गुस्सा आया। वह चिल्लाया—'तुम सब यहाँ क्या कर रहे हो!' उसकी कर्कश आवाज सुन कर लड़के डर गए और तुरंत सिर पर पैर रख कर भाग खड़े हुए।

अब दैत्य ने निश्चय किया कि किसी को इस बगीचे में आने नहीं देना चाहिए। इसलिए उसने उस के चारों ओर ऊँची चहर-दीवारी बनवाई। इतना ही नहीं; फाटक के पास एक तख्ता लगा दिया कि बिना इजाजत इस बगीचे में कोई कदम नहीं रखे।

अब बच्चों के खेलने के लिए कहीं जगह बाकी न रह गई। सड़कों पर रोड़े थे, और धूल उड़ती थी। नन्दन-वन से सुन्दर उस बगीचे की याद करके वे बहुत उदास हो गए।

बसंत ऋतु आई। जहाँ देखो, फूल खिल उठे। चिड़ियों की सुरीली आवाजें गूँजने लगीं। लेकिन दैत्य के उस बगीचे में शिशिर ऋतु का कब्जा जमा रहा। बच्चों के बगैर उस में न चिड़ियाँ चहचहाना चाहती थीं, न फूल खिलना चाहते थे। एक बार एक छोटी सी दूब ने बाहर झाँका। लेकिन फाटक पर राक्षस की तख्ती टँगी देख कर डर के मारे मुँह छिपा लिया।

हरदयालसिंह

अब सरदी और पाले की खुशी का ठिकाना न था। उनको खदेड़ने वाली बसन्त ऋतु इस बाग में नहीं घुस सकती थी। दोनों के दिन अब यहाँ बड़े मौज से कट रहे थे।

बरफ पड़ने लगी। सारी जमीन सुफेद हो गई। पेड़ों की डालें भी सुफेद दीखने लगीं। शीत-वायु का अंधड़ चलने लगा। उससे दैत्य के घर को बहुत नुकसान हुआ। खिड़कियों में लगे शीशे टूट-फूट गए। 'इस बार बसन्त के आने में इतनी देर क्यों हुई?' दैत्य ने अचरज से सोचा। कारण बिल्कुल समझ में न आया।

एक दिन सबेरे जब दैत्य जगा तो कहीं से सुरीला गाना सुनाई दिया। खुशबू से लदी बयार चलने लगी। दैत्य ने सोचा—'शायद बसन्त ऋतु आ गई है!' और खिड़की से बाहर झाँक कर देखा।

बाग की चहर-दीवारी में एक जगह एक बड़ा सूराख हो गया था।

उस में से होकर एक एक कर लड़के सब अन्दर घुस गए थे। पेड़ की डालों पर वे झूल रहे थे और पेड़ खुशी से झूम रहे थे। हरी-भरी घास के ऊपर छोटे छोटे सुफेद फूल मुसकुरा रहे थे। विहगों के कल-कूजन से सारा बाग गूँज रहा था।

लेकिन बाग के एक कोने में एक छोटा-सा लड़का मुँह लटकाए खड़ा था। बेचारा बहुत छोटा था, इसलिए पेड़ पर वह नहीं चढ़ सकता था।

यह देख कर दैत्य का हृदय पिघल गया। 'मैं कितना स्वार्थी हूँ! इसीसे यहाँ बसंत-ऋतु नहीं आई थी।' उसने सोचा।

तुरन्त वह उस पेड़ की तरफ़ चला। दैत्य को देखते ही लड़के भागने लगे। उन्हें

इस तरह भागते देख दैत्य को बहुत दुःख हुआ। कहीं फिर शिशिर-ऋतु न आ जाय!

बाग के कोने में वह लड़का खड़ा आँसू बहा रहा था। उसने दैत्य को देखा नहीं। इसलिए भागा भी नहीं। नज़दीक जाकर दैत्य ने धीरे से उसे उठा लिया और डाल पर बिठा दिया। तुरन्त उस पेड़ में हज़ारों फूल खिल उठे, सैकड़ों चिड़ियाँ चहचहा उठीं। नन्हे बालक का चेहरा खुशी से चमकने लगा। उसने अपनी बाहें गले में डाल दीं और दैत्य को चूम लिया।

दूसरे बच्चे दूर से यह दृश्य देख रहे थे। वे खुशी से तालियाँ बजाने लगे। वे समझ गए कि दैत्य भी अच्छा आदमी है। इसलिए लौट आए।

'आज से यह बगीचा तुम्हीं लोगों का है!' दैत्य ने कहा और पल भर में सारी चहार-दीवारी गिरा दी। उस दिन से वह भी लड़कों के साथ खेलने लगा।

एक दिन दैत्य ने उनसे पूछा—'अच्छा, वह नन्हा सा लड़का कहाँ है?'

'हमें नहीं मालूम! हमने उस लड़के को पहले कभी देखा भी नहीं था।' लड़कों ने जवाब दिया। लड़कों को खेलते देख कर दैत्य को खुशी तो होती थी; मगर उस नन्हें बच्चे को न देख उसका मन बहुत उदास रहने लगा।

यों बरसों बीत गए। दैत्य बूढ़ा हो गया। अब वह लड़कों के साथ खेल नहीं सकता था; इसलिए उनको खेलते देख कर संतोष कर लिया करता था। वह कभी कभी सोचता—'मेरे बगीचे में तरह तरह के सुन्दर फूल हैं। लेकिन ये बच्चे उनसे भी सुन्दर हैं।'

एक दिन दैत्य जगा तो उसका जी अच्छा नहीं था। शिशिर-ऋतु को देख कर अब दैत्य को क्रोध नहीं आता था।

क्योंकि वह जान गया था कि वह वसंत-ऋतु का ही भाई है। जाड़े के दिनों में जो पेड़ लम्बी तान कर पड़े रहते हैं, वे वसंत-ऋतु के आने पर फिर फूलते हैं।

बाग के एक कोने में एक पेड़ फूलों से लदा हुआ था। उसकी डालें रुपहली थीं और फूल सुनहले थे। उस पेड़ के नीचे फिर वही बालक खड़ा दीखा जो उस दिन आँसू बहा रहा था।

बूढ़ा दैत्य फूला न समाया। वह उस पेड़ की ओर दौड़ा। नज़दीक जाकर देखने पर दैत्य के क्रोध का ठिकाना न रहा। किसी ने उस नन्हें बच्चे के हाथ-पाँव में कील ठोंक दिए थे। 'बोलो, तुम्हारी यह हालत किसने कर दी है!' वह चिल्लाया। 'बताओ; मैं अभी उस दुष्ट का काम तमाम कर दूँगा।' वह गरजा।

'यह प्रेम का घाव है।' वह नन्हा बच्चा बोला।

यह सुन कर दैत्य के विस्मय का ठिकाना न रहा।

वह श्रद्धा के साथ उस बच्चे के सामने घुटने टेक कर बोला— 'देव! सच सच बताओ! तुम कौन हो!'

'यह भी कोई सवाल है! आज तुम मुझे अपने बगीचे में खेलने दो! क्योंकि एक दिन तुम भी मेरे बगीचे में खेलने आओगे! जानते हो, मेरा बगीचा कहाँ है! मेरा बगीचा स्वर्ग में है!' इतना कह कर वह बच्चा मुस्कुरा पड़ा। उसकी मुसकान की ज्योत से सारी दिशाएँ जगमगा उठीं।

उस दिन शाम को जब लड़के उस बगीचे में खेलने आए तो उन्होंने देखा कि बेचारा बूढ़ा दैत्य उस पेड़ के नीचे मरा पड़ा है!

उसके बदन पर तरह तरह के फूल बिखरे हुए थे और उन फूलों की अलौकिक सुगन्ध से सारा बगीचा गमक रहा था!

अजीब सवाल

किसी समय कमलनगर पर वीरसेन नाम का राजा शासन चलाया करता था। वह बड़ा बहादुर आदमी था। उसकी तलवार का लोहा सब लोग मानते थे।

एक दिन जब वीरसेन दरबार में बैठा हुआ था तो एक औरत रोती धोती उसके सामने आकर खड़ी हो गई। राजा वीरसेन ने उस औरत को तसल्ली दी और पूछा कि बात क्या है।

तब वह औरत बोली—'देव! मेरा नाम चन्द्रावती है। मेरे पति को कालकेतु नाम के एक अत्याचारी राजा ने कैद करके बिना किसी कसूर के काल-कोठरी में डाल रखा है। मैं यह अच्छी तरह जानती हूँ कि आप बड़े प्रतापी राजा हैं। ऐसा कोई काम नहीं जो आप नहीं कर सकते। इसलिए इस दीना पर कृपा करके मेरे पति को छुड़ा दीजिए। यही मेरी विनती है।'

'लेकिन मुझे तो मालूम ही नहीं कि कालकेतु नाम का कोई राजा भी है।' वीरसेन ने कहा।

तब उस औरत ने आंसू पोंछ कर कहा—'लेकिन हुजूर! यह तो बड़े अचरज की बात है। क्योंकि कालकेतु आप के पड़ोस ही का राजा है। वह बड़ा अत्याचारी है और जिसको चाहता है उसे किले में बन्द करके खूब सताता है।'

'अच्छा, तुम कोई फिक्र न करो। मैं उसकी खबर लूँगा और तुम्हारे पति को बचाऊंगा।' इतना कह कर वीरसेन ने उस औरत को समझा-बुझा कर वहां से भेज दिया।

दूसरे दिन सवेरे ही उठ कर राजा वीरसेन कालकेतु से लड़ने के लिए निकला।

अनेकों जङ्गल, झाड़ी, पहाड़ और नदियाँ वगैरह पार करते हुए वीरसेन कुछ दिन बाद कालकेतु के किले के नजदीक जा पहुँचा।

उसका इरादा था कि वह खुद ही द्वन्द्व-युद्ध में कालकेतु को हराए।

मगर किले के नज़दीक जाकर देखा तो फाटक बन्द था। वह किवाड़ पर लात मार कर चिल्लाने लगा—'इस किले का जो राजा हो वह बाहर आए। वीरसेन उसे युद्ध के लिए ललकारता है।' तुरन्त किवाड़ खुल गए। एक बड़ा ही कुरूप आदमी बाहर आया और खिलखिलाकर बोला—'अच्छा तो तुम्ही वीरसेन हो! मेरा नाम कालकेतु है। तुम मुझ से लड़ने आए हो!' उसने कहा।

कालकेतु का रङ्ग-ढङ्ग देख कर वीरसेन को बहुत क्रोध आ गया। उसने तुरन्त म्यान से तलवार निकाल ली और दुश्मन को ललकारा। कालकेतु फिर हँसते हुए बोला—'वीरसेन! शायद तुम समझते हो कि तुम्हारी तलवार तुम्हारे ही काबू में है। तुम नहीं जानते कि इस किले के चारों ओर बिना मेरी इजाज़त के हवा भी नहीं चल सकती।'

अब तो वीरसेन को बहुत गुस्सा आया और उसने तलवार उठाई। लेकिन आश्चर्य! उसका हाथ जो उठा तो उठा ही रह गया। हाथ की तलवार वैसे ही हवा में टँगी रह गई। कालकेतु ने मुस्कुराकर कहा—'मैं जानता हूँ कि तुम यहाँ क्यों आये हो। अच्छा, उस औरत के पति को मैं छोड़ दूँगा। लेकिन उसके बदले तुम्हें कैद कर लूँगा। बोलो, क्या कहते हो? मंजूर है?' यह कह कर वह वीरसेन के नज़दीक आया।

बेचारा वीरसेन सन्न रह गया। उसकी सारी वीरता किसी काम न आई। वह खड़ा खड़ा सोच ही रहा था कि कालकेतु फिर बोला—'तुम्हें कैद करना मुझे भी उतना अच्छा नहीं लगता। इसलिए सुनो—मेरे एक सवाल का जवाब एक साल के अन्दर दे दो। मैं तुम्हें माफ़ करके छोड़ दूँगा।'

'अच्छा! बताओ अपना सवाल!' लाचार वीरसेन ने पूछा।

'सवाल तो बड़ा आसान है। हाँ, जवाब देना ज़रूर मुश्किल है। अच्छा तो सुनो मेरा सवाल: 'औरत सब से बढ़ कर क्या चाहती है?' एक साल के अन्दर इस का जवाब जान कर मुझे बता देना होगा।' कालकेतु ने अपना सवाल बताया। 'बहुत अच्छा!' कर वीरसेन वहाँ से चल पड़ा। उसने अपनी राजा की पोशाक उतार कर एक गठरी बाँध ली और एक मामूली प्रजा के भेस में गाँव-गाँव शहर-शहर भटकने लगा। कालकेतु का सवाल उसने सैकड़ों औरतों के सामने दुहराया। जवाब भी उसे तरह तरह के मिलने लगे। किसी ने कहा—'औरत सब से बढ़ कर रूपवान पति चाहती है।' किसी ने कहा—'नहीं, वह धनवान पति चाहती है।' और कुछ ने कहा—'नहीं, नहीं, वह बुद्धिमान पति को ही ज्यादा चाहती है।' इस तरह एक का जवाब दूसरे से न मिलता था।

इतने में साल बीतने को आया। मीयाद चुकने को थी। इसलिए अपने वादे के मुताबिक वीरसेन कालकेतु के पास लौट चला।

कुछ दिन तक सफ़र करके एक रात वह उसके किले के नज़दीक जा पहुँचा। मगर वहाँ जाकर देखा तो रात होने की वजह से किले के फाटक बन्द थे।

वीरसेन ने सोचा—"रात यहीं किले के बाहर काट दूँगा और सवेरे कालकेतु से मिलूँगा।" यह सोच कर वह एक पेड़ के नीचे लेट रहा।

आधी रात हुई थी कि अचानक उसे किसी औरत के रोने की आवाज़ सुनाई दी। वीरसेन की तन्द्रा टूट गई। उसने चौंक कर उस तरफ़ देखा तो दूर पर एक टिमटिमाती सी रोशनी दिखाई पड़ी।

वह उठ कर सीधे रोशनी की तरफ़ चल पड़ा। वहाँ जाने पर उसे एक खूँसट बुढ़िया रोती हुई दिखाई दी।

'इतनी रात गए क्यों इस तरह रो रही हो?' वीरसेन ने पूछा।

'मेरी अस्सी साल की उमर हो गई है। लेकिन अभी तक ब्याह नहीं हुआ। इसलिए करीब साठ साल से मैं इसी तरह रो रही हूँ।' उस बुढ़िया ने कहा।
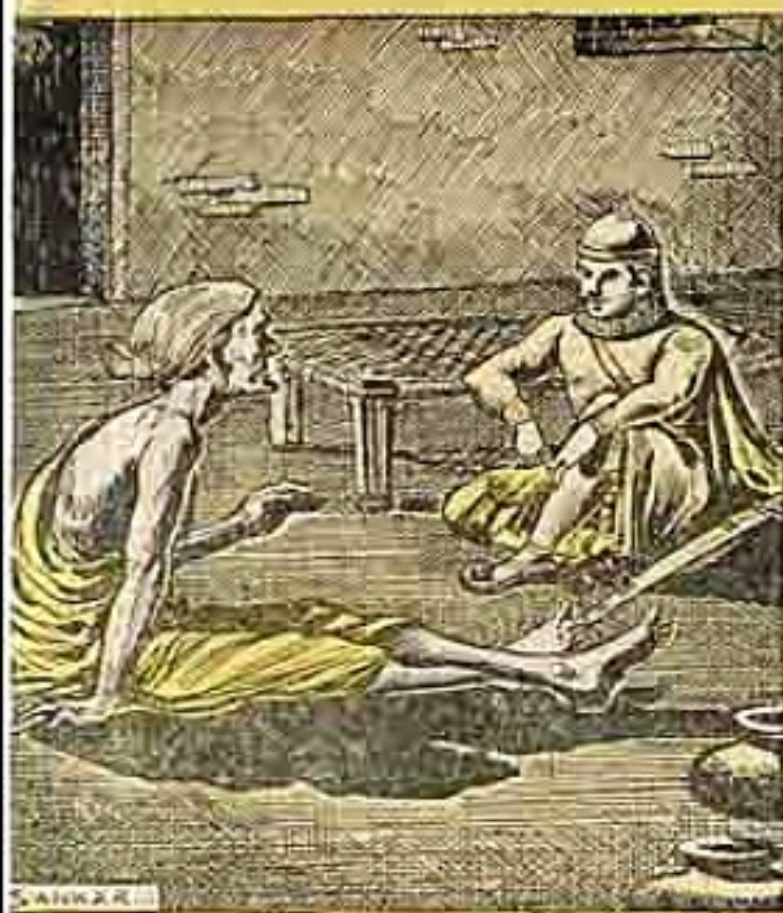
बुढ़िया की ये बातें सुन कर राजा वीरसेन को बहुत अचरज हुआ। उसने सोचा—'इस बुढ़िया का तन बूढ़ा हो गया है। मगर मन अभी बूढ़ा नहीं हुआ। देखो, इतनी उमर में भी यह ब्याह करना चाहती है।'

इधर बुढ़िया जो उसके अचरज की वजह जान गई थी, कहने लगी—'राजन! आप के मन की बात मुझसे छिपी नहीं है। मैं यह भी जानती हूँ कि आप एक सवाल का जवाब जानने के लिए ही इस तरह भटक रहे हैं और यह जवाब आप को अभी तक नहीं मिला है। अच्छा, मैं आप के सवाल का जवाब बता दूँगी। लेकिन पहले बताइये, आप मुझे क्या देंगे?'

'जवाब बता दो। तुम जो मांगोगी सो दूँगा।' वीरसेन ने कहा।

'अच्छा तो सुन लो—कालकेतु का सवाल है—'स्त्री सब से बढ़ कर क्या चाहती है?' स्त्री सब से बढ़ कर यही चाहती है कि सब लोग उसकी मर्ज़ी के मुताबिक चलें।'

बुढ़िया का जवाब सुन कर वीरसेन को बहुत अचरज हुआ। वह मन ही मन उसकी सूझ की बहुत तारीफ़ करने लगा। उसने सोचा—'इस बार कालकेतु ज़रूर हार मान लेगा।'

वीरसेन सवेरे उठ कर कालकेतु के पास गया और बुढ़िया का जवाब दोहरा दिया।

कालकेतु को उसकी सूझ पर बहुत अचरज हुआ। उसने उसकी बड़ी प्रशंसा की और छोड़ दिया।

बीरसेन फूला न समाया और किले के बाहर आते ही सीधे उस बुढ़िया के पास जाकर बोला—'बोलो, तुम क्या चाहती हो?' बुढ़िया उसकी नादानी पर हँसने लगी। आखिर वह बोली—'राजन! मैं साठ साल से अपने दूल्हे की राह देख रही हूँ। फिर भी आज तक मेरी आशा पूरी न हुई। आज आप की कृपा से वह पूरी होने वाली है। या तो मुझसे खुद ब्याह कर लीजिए, या अपने यहाँ के किसी युवक से करा दीजिए।'

यह सुन कर बीरसेन के सिर पर मानो बिजली टूट पड़ी। कौन आँख रहते अंधा बनेगा? कौन ऐसा बेवकूफ़ जवान होगा, जो यह बला मोल लेने को राज़ी होगा?

मगर उसने वादा जो किया था। लाचार वह उसे अपने साथ लेकर कमलनगर को लौट आया। बहुत दिन बाद घर लौटे हुए राजा की बड़ी आव-भगत हुई। जगह जगह उत्सव मनाए जाने लगे।

लेकिन बेचारे बीरसेन का मन इन सब में नहीं था। वह बेचारा चिन्ता से घुला जा रहा था। यों उसे दिन दिन दुबला होते देख कर मन्त्री वगैरह कारण पूछने लगे। लेकिन उसने किसी से कुछ नहीं बताया।

आखिर उसके भांजे रूपधर ने किसी तरह उसकी चिंता का कारण जान लिया। वह अपने मामू की चिन्ता दूर करने के लिए उस बुढ़िया से ब्याह करने को राज़ी हो गया। कुछ दिन बाद ब्याह हो भी गया।

लोगों ने मन में क्या क्या सोचा, पता नहीं। पर प्रगट-रूप से कुछ नहीं बोले। राज-घराने का ममला था। किसकी मजाल थी कि ज़ुबान तक हिलाए? सोहाग-रात आई। एक सजे-सजाए कमरे में

दुल्हिन अपने पति का इन्तज़ार कर रही थी। रूपधर जब उस कमरे में गया तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उस कमरे में उसे उस बुढ़िया के बदले एक सुन्दर युवती दिखाई दी।

'तुम कौन हो?' आखिर उसके मुँह से निकला।

'मैं! मैं रूपधर की दुल्हिन हूँ। मैं ही वह बुढ़िया हूँ, जो थोड़ी देर पहले शाप से मुक्त हो गई।' उस सुन्दरी ने कहा।

रूपधर का अचरज और भी बढ़ गया। उसने पूछा—'सुन्दरी! तुम्हारे ऊपर कैसा शाप था और तुम कैसे उससे मुक्त हो गईं?' तब उस युवती ने जवाब दिया—'हे राजकुमार! अपने मामू की चिन्ता दूर करने के लिए, ज्यों ही तुमने मुझसे ब्याह करना मंजूर कर लिया त्यों ही मेरा आधा शाप दूर हो गया। बाकी आधे शाप को दूर करने के लिए मैं एक सवाल करूँगी। मेरा पूर्ण रूप से शाप-मुक्त हो जाना तुम्हारे जवाब पर निर्भर होगा।'

तब रूपधर ने कहा—'अच्छा! बताओ अपना सवाल!'

'मैं हर रोज़ इस सुन्दर रूप में थोड़े ही समय तक तुम्हें दिखाई सकती हूँ। तुम बताओ कि किस किस समय पर मैं यह रूप धरा करूँ?' उस युवती ने सवाल किया।

'जब जब तुम्हारी मरज़ी हो! मैं इस मामले में कुछ नहीं बोलूँगा।' रूपधर ने बिना हिचकिचाए जवाब दिया।

उसका यह उत्तर सुन कर युवती-रूप वाली वह बुढ़िया फूली न समाई। वह तुरन्त रूपधर के नज़दीक आकर बोली—'तुमने सब कुछ मेरी मरजी पर छोड़ दिया और अपनी टाँग नहीं अड़ाई। इससे मेरा शाप छूट गया। अब मैं हमेशा इसी रूप में रह जाऊँगी।' यह सुन कर रूपधर की खुशी का ठिकाना न रहा।
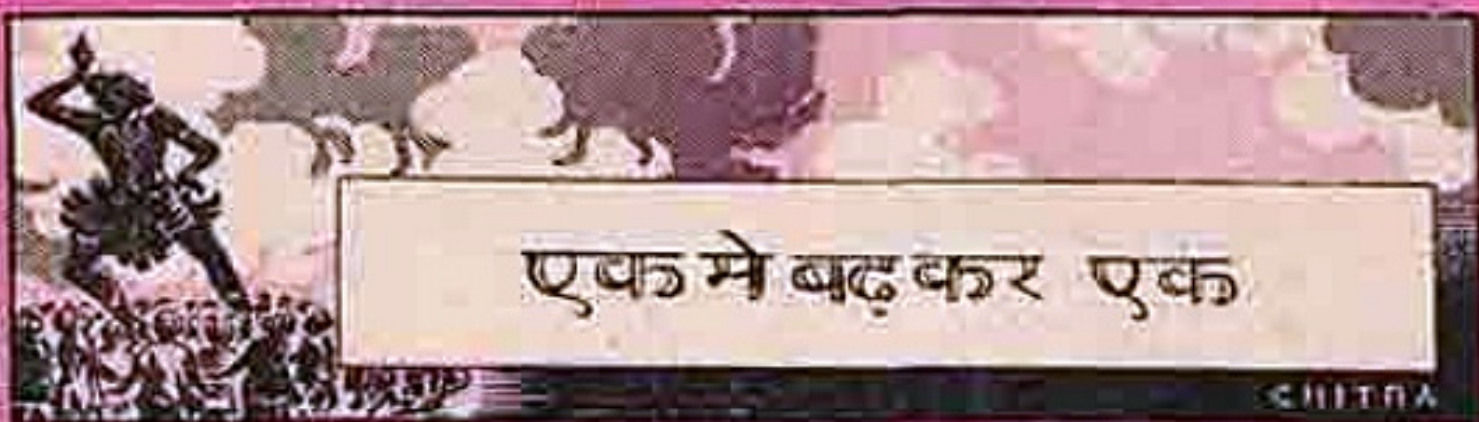
एक से बढ़कर एक

किसी समय हमारे देश में एक बड़ा निपुण मूर्तिकार रहा करता था। वह जिस प्रदेश में रहता था उस प्रदेश के राजा को मूर्तियों का बड़ा शौक था। एक दिन उसने इस मूर्तिकार को बुलवाया और ८ गज ऊँची महादेवजी की मूर्ति बनाने को कहा।

'इस में क्या लगता है? यह तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है।' मूर्तिकार ने कहा और तीन महीने बाद राजा के इच्छानुसार एक महान मूर्ति तैयार कर दी। इस मूर्ति को देख कर राजा फूला न समाया। उतनी ऊँची मूर्ति उस ज़माने में हमारे देश में कहीं नहीं थी। देश देश से लोग उसे देखने आने लगे और थोड़े ही दिनों में राजा का यश चारों ओर फैल गया। राजा ने मूर्तिकार को बहुत अच्छा इनाम दिया।

लेकिन मूर्तिकार जब वह इनाम लेकर अपने गाँव लौटने लगा तो राजा के मन में एक शंका हुई। उसने सोचा—'हो सकता है, और कोई राजा इस मूर्तिकार को बुलाए और इनाम का लालच देकर मेरी मूर्ति से भी बड़ी मूर्ति तैयार करा ले। तब तो मेरी मूर्ति को पूछने वाला कोई न रहेगा और मेरी कोई बड़ाई न रहेगी।' यह सोच कर उस कुकर्मी राजा ने मूर्तिकार का दाहना हाथ कटवा कर छोड़ दिया, जिस से वह सुन्दर मूर्तियाँ न बना सके।

राजा की इस कृतघ्नता के कारण मन ही मन घुलता हुआ मूर्तिकार अपने गाँव लौटा और राजा से बदला चुकाने की फ़िराक़ में लग गया।

आखिर उसने उस राजा के दुश्मन चैनूर के राजा के पास जाकर अपनी राम-कहानी

सोमचन्द्र शर्मा

सुनाई और बोला—'राजन! मैं लूला हो गया। लेकिन इससे क्या! मेरी प्रतिभा कहीं नहीं गई।' यह कह कर उस ने अपने बाएँ हाथ से ठूँठों पर रख दिया। यह देख कर वेनूर के राजा को बहुत अचरज हुआ। उसने कहा—'अच्छा, दाहना हाथ कट जाने पर भी तुम मूर्तियाँ बना सकते हो?'

'बायाँ हाथ अभी बचा हुआ है हुजूर! जिस तरह वीर अर्जुन दोनो हाथों से तीर चलाते थे, उसी तरह मैं भी दोनों हाथों से मूर्तियाँ आसानी से गढ़ सकता हूँ।' उसने कहा। 'अच्छा! तब तुम मेरे लिए एक मूर्ति ऐसी बना दो जो तुम्हारे देश के राजा की मूर्ति से भी बड़ी हो।' राजा ने हुक्म दिया। 'जरूर बना दूँगा। इस बार १२ गज ऊँची मूर्ति बना दूँगा।' मूर्तिकार ने कहा।

उस विश्वास-घाती राजा से बदला चुकाने के इरादे से वह दूसरे ही दिन से काम में लग गया और कुछ ही दिनों में पहले से भी बड़ी एक मूर्ति बना दी। उस मूर्ति को देख कर वेनूर का राजा बहुत खुश हुआ। लेकिन पहले राजा के मन में जो शङ्का उठी थी वही अब इस के मन में भी उठी। मूर्तिकार कहीं दूसरी जगह चला जाय और इस से भी बड़ी मूर्ति बनाने लगे तो? तब तो उसकी मूर्ति को पूछने वाला कोई नहीं रहेगा! आखिर पहले राजा को जो उपाय सूझा था वही इस राजा को भी सूझा। उसने इनाम वगैरह देने के बाद मूर्तिकार का बायाँ हाथ भी कटवा कर छोड़ दिया।

रस्सी जल गई, मगर ऐंठन नहीं गई। उसी तरह मूर्तिकार के दोनों हाथ कट गए; मगर बदला लेने का ख्याल दिल से न हटा। उसने श्रवण-बेलगोला के राजा के पास जाकर अपना दुखड़ा सुनाया और बोला—'देखिए तो हुजूर! इन दोनों राजाओं की

कृतघ्नता! मैंने उनके लिए दो अद्वितीय मूर्तियाँ बना दीं और बदले में उन्होंने मेरे दोनों हाथ कटवा लिए। लेकिन इस से क्या? मेरी प्रतिभा कौन चुरा सकता है!' वह आवेश में कह गया।

'तो तुम दोनों हाथ के लूले होकर भी मूर्तियाँ बना सकते हो?' राजा ने अचरज से पूछा।

'खुद नहीं बना सकता तो क्या हुआ? अपने दिमाग से काम लूँगा और चेलों से आपके लिए एक अपूर्व मूर्ति बनवा दूँगा!' मूर्तिकार ने जवाब दिया। 'अच्छा! ऐसा ही करो!' राजा ने कहा।

दूसरे दिन से मूर्तिकार एक ऊँचे आसन पर बैठ कर अपने चेलों को आज्ञा देते हुए एक बहुत बड़ी मूर्ति बनवाने लगा। यही १९ गज ऊँची गोमतेश्वर की मूर्ति थी और यही उसकी प्रतिभा और कला का अंतिम चमत्कार थी।

क्योंकि पहले दोनों राजाओं के मन में जो दुश्शंका हुई वही इस तीसरे राजा के मन में भी पैदा हो गई। इसने सोचा—'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' और इस बार मूर्तिकार का सिर ही कटवा डाला।

बहुत दिन बीत गए और आज तीनों राजाओं की कब्रों पर धूल उड़ रही है। लेकिन आज भी मूर्तिकार की बनाई हुई तीनों मूर्तियाँ वैसे ही खड़ी हैं और उस अमर कलाकार के यश को चारों तरफ छिटका रही हैं।

उस अभागे मूर्तिकार की प्रतिभा तो महान थी, लेकिन वह उसके किसी काम न आई। या ऐसा कहना चाहिए कि वह उसके काम तो आई; मगर उस से वह अपने जीवन-काल में कोई फायदा न उठा सका। उलटे वह प्रतिभा ही उस अभागे की मौत का कारण भी बन गई।
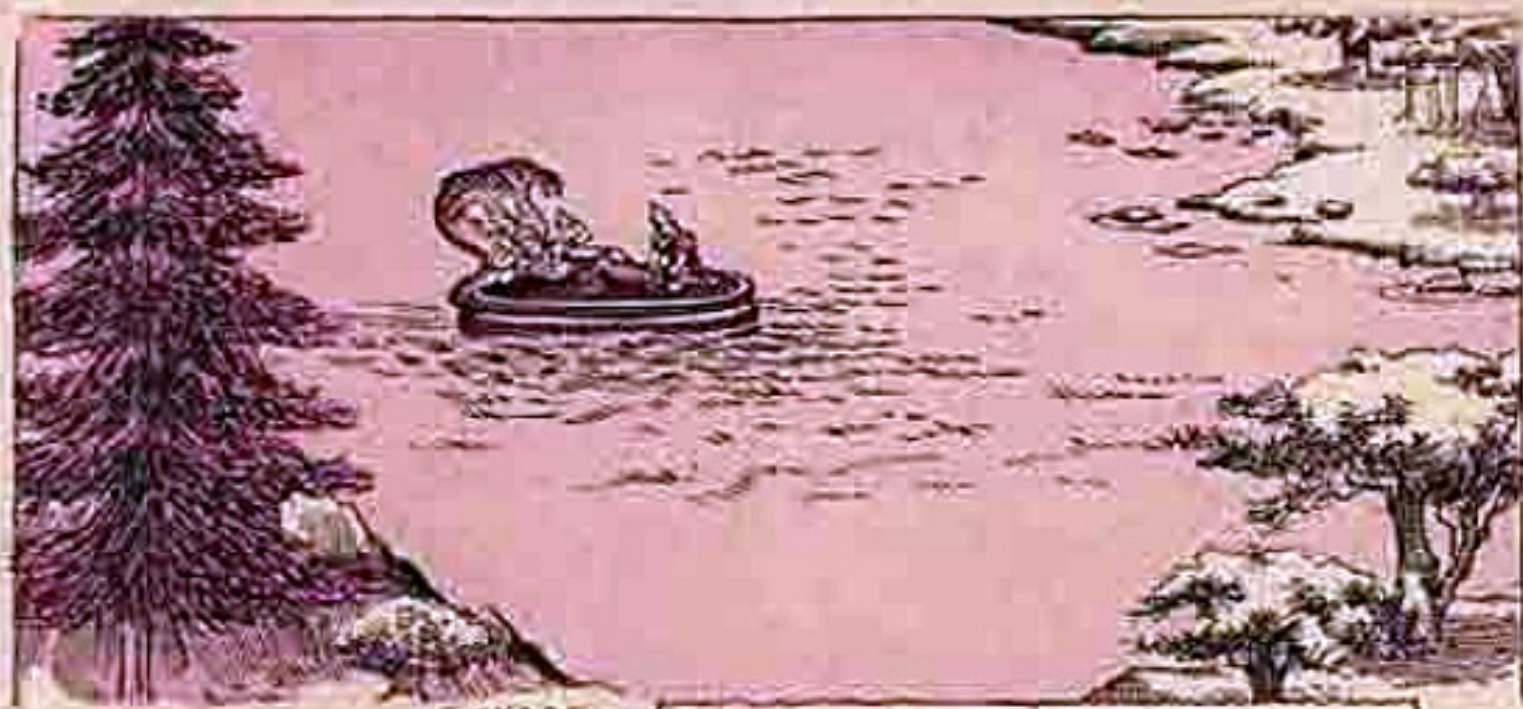
देवदार

प्रलय के बाद भगवान विष्णु ने फिर से सृष्टि प्रारंभ की। कुछ दिन तक सृष्टि करने के बाद वे बहुत थक गए और आराम करने की सोचने लगे। लेकिन फिर शङ्का हुई कि मैं सो जाऊँगा तो इस सृष्टि की रक्षा कौन करेगा? क्योंकि तब तक आदमी और जानवरों की पैदाइश नहीं हुई थी।

आखिर भगवान विष्णु ने पेड़ों को, जिन की सृष्टि हो गई थी, बुलाया और कहा—' जब तक मैं नींद से जाग न जाऊँ, तब तक इस सृष्टि की रखवाली का भार तुम्हारे ऊपर होगा।' इतना कह कर उन्होंने उन पेड़ों को पहाड़ों, घाटियों और मैदानों में भेज दिया और स्वयं निश्चिन्त होकर शेषनाग की शय्या पर सो रहे।

नीम, बादाम, बबूल, बरगद वगैरह पेड़ मैदानों में पहरा देने गए। बाँस, सागवान वगैरह कई पेड़ घाटियों में गए। मगर 'देवदार' पहाड़ की ऊँची चोटियों पर चढ़ गया। सभी पेड़ अपनी अपनी जगह खड़े होकर भगवान विष्णु के आज्ञानुसार पहरा देने लगे। लेकिन कुछ दिन बीतते ही बहुत से पेड़

धीरेन्द्र दत्त

थक गए और अपनी डालें झुका कर झपकियाँ लेने लगे। कुछ दिन और बीत गए और कुछ पेड़ ऊँघने लगे। और कुछ दिन बाद बाकी पेड़ भी जम्हाइयाँ लेने लगे और डालें झुका कर सो रहे। जब आखिर भगवान विष्णु की नींद टूटी तो उन्होंने देखा कि सभी पेड़ मज़े में सो रहे हैं। उन्हें बहुत गुस्सा आया। 'इन पेड़ों की इतनी मजाल! मेरी आँखें जरा बन्द हुई कि सभी, मेरा हुक्म तोड़ कर खुर्राटे लेने लगे।' उन्होंने सोचा। इतने में किसी ने पुकारा—'देव!' भगवान ने सिर उठा कर देखा तो पहाड़ की ऊँची चोटी पर 'देवदार' उसी तरह खड़ा था। 'देव! मैं नहीं सोया। मैं आपकी सृष्टि की रखवाली कर रहा हूँ।' वह बोला। भगवान विष्णु 'देवदार' से बहुत खुश हुए और वर दिया कि वह हमेशा हरा-भरा बना रहेगा। तभी से उसका नाम भी देवदार पड़ गया।

करके देखो तो ?

दो कांच के गिलास ले लो, एक पानी भरा हुआ, दूसरा खाली। एक पतली सी रबर की नली ले लो। मेज़ पर कुछ किताबें एक के ऊपर एक रख दो और उनके ऊपर पानी भरा हुआ गिलास रख दो। खाली गिलास उसके नज़दीक ही नीचे रख दो।

रबर की नली लेकर उसका एक सिरा ऊँचाई पर के गिलास में इस तरह रख दो जिससे वह पानी में अच्छी तरह डूब जाए। अब दूसरा सिरा अपने मुँह में रख कर जोर से चूसो जिससे पानी मुँह के अन्दर आ जाए। ज्यों ही मुँह में पानी आने लगे त्यों ही उस सिरे को उँगलियों से दबा कर पकड़ लो और हिफ़ाज़त से नीचे के खाली गिलास में छोड़ दो। हाँ, पानी वाले गिलास में जो सिरा हो उसे बिलकुल हिलाना-डुलाना नहीं। हाँ, और एक बात है, रबर की नली का सिरा ऊपर वाले गिलास में ही ज्यादा होना चाहिए। अब तुम जिस सिरे को पकड़े हुए हो उसे उँगलियों से दबाना छोड़ दो। बस, ऊपर के गिलास का पानी अपने आप नीचे वाले गिलास में आ जाएगा।

मेज़ पर एक तश्तरी रख दो और तश्तरी के बीचों-बीच एक सिक्का रख दो। (दूसरा चित्र देखो!) मगर बगल से देखने वालों को सिक्का नहीं दिखाई देगा। (तीसरा चित्र देखो!) अब अपने मित्र को बुला कर ज़रा नीचे, जिससे सिक्का नहीं दिखाई दे, बिठा दो! (चौथा चित्र देखो!) उसे उसी तरह बैठे रहने दो और धीरे से तश्तरी में पानी

ढालना शुरू करो। धीरे-धीरे तश्तरी में का सिक्का उसे दिखाई देने लगेगा मानों वह ऊपर उठ आया हो। लेकिन वास्तव में सिक्का जैसे का तैसा पड़ा है।
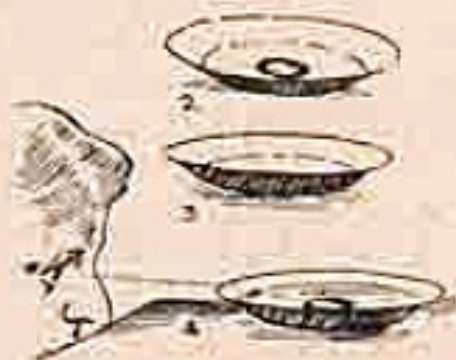
अलकापुर के राजा का नाम विक्रमदेव था। उनके एक वीर सेनापति था। उसका नाम नीलकण्ठ था। एक विजय-दशमी को राजा अपने मन्त्रियों और सेनापतियों के साथ बगीचे में बैठ कर बातें कर रहा था। रात का वक्त था और चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी। उसी समय एक अजनबी घोड़ा दौड़ाते हुए वहाँ आया और घोड़े से उतर कर राजा के सामने जा खड़ा हुआ।

इस बेअदब आदमी को देख कर राजा ने क्रोध से पूछा—'तुम कौन हो? यहाँ कैसे चले आए?' 'मैं एक वीर योद्धा हूँ।' उस आदमी ने जवाब दिया। 'सो तो ठीक है। मगर तुम चाहते क्या हो?' राजा ने पूछा। 'योद्धा चाहता है क्या? इसके अलावा कि उसे किसी से लड़ने का मौका मिले! है कोई आपके दरबार में जो मुझसे लड़ने की हिम्मत रखता हो?' वह आदमी बोला। वहाँ जितने लोग जमा थे सब उस आदमी को देख कर डरने लगे। लम्बा-तगड़ा, काला-कलूटा सा आदमी। हाथ में चमाचम चमकता हुआ फरसा था। उसे देख कर सब लोगों का मुँह सूख गया।

'हमारा वीर सेनापति नीलकण्ठ तुम से लड़ने को तैयार होगा।' राजा ने हिचकिचाते हुए कहा और उधर नीलकण्ठ उठ खड़ा हुआ। लेकिन उस योद्धा ने हँस कर कहा—'मैं यहाँ लड़ने नहीं आया हूँ। देख लिया न यह फरसा? तुममें से कोई भी बस, इसका एक वार अपनी गर्दन पर झेल ले। इसके बदले में अगले साल इसी दिन वह मेरे यहाँ आए और इसी फरसे से मेरी गर्दन पर एक वार कर ले।' उसकी यह शर्त सुन कर सब लोग सोच में पड़ गए। उस तेज़ फरसे का एक वार गर्दन पर झेल कर जिन्दा रहना वाकई नामुमकिन

रामसुमिरन पांडे

था। अगले साल बदला चुकाने की बात भगवान जाने!

सब लोग सन्न खड़े देख रहे थे और वह अजनबी इन्तज़ार कर रहा था! आखिर नीलकण्ठ ने उसके हाथ में से फरसा ले लिया और पूरा जोर लगा कर उसकी गरदन पर एक वार कर दिया।

आश्चर्य! फरसा गरदन में आधी दूर तक धँस गया; मगर लहू की एक भी बूँद नीचे न गिरी। वह अजनबी उसी तरह अविचल खड़ा रहा। कुछ क्षण बाद उसने फरसा ऐसे निकाल लिया जैसे कुछ हुआ ही न हो और गरदन टटोल कर देखी। घाव देखते देखते भर गया था। वहाँ कोई निशानी भी बाकी न रही।

उसने नीलकण्ठ से हँस कर कहा—'भैया! तुम्हारी बारी हो गई। अब मेरी बारी है। हाँ, अगले साल इसी दिन वादे के अनुसार वन-दुर्ग को आना। मैं तुम्हारा इन्तज़ार करता रहूँगा!' इतना कह कर वह जैसे आया था वैसे ही चला गया। सब लोग मुँह बाए देखते खड़े रह गए।

एक साल यों ही बीत गया। देखते देखते विजय-दशमी निकट आ गई। बेचारे नीलकण्ठ को पिछले साल की विजय-दशमी के दिन की विचित्र घटना भूली नहीं थी। उसे वादे के मुताबिक वन-दुर्ग जाना ही था। नहीं तो सारे राज्य पर कलङ्क लग जाता। आखिर सब से बिदा लेकर नीलकण्ठ वन-दुर्ग को रवाना हुआ। बेचारे के लौटने की आशा किसी के मन में न थी।

लेकिन नीलकण्ठ को कोई सोच न था। वह जङ्गलों-झाड़ियों में से होकर दिन-रात चलता गया।

यों बहुत दूर जाने के बाद वह एक जगह घोड़े से उतरा और एक पेड़ के नीचे जाकर लेट गया। इतने में उसे कहीं से एक औरत के

रोने की आवाज़ सुनाई दी। दौड़ा-दौड़ा उस तरफ़ गया तो देखा कि कुछ लुटेरे एक राजकुमारी के गहने छीन रहे हैं। नङ्गी तल्वार हाथ में लिए नीलकण्ठ को देखते ही लुटेरे सिर पर पैर रख कर भाग गए।

नीलकण्ठ ने उस राजकुमारी को तसली दी और पूछा कि बात क्या हुई? राजकुमारी ने अपना सारा हाल सुना कर कहा—'आज आपने मेरी जान बचाई। मैं आप का एहसान कभी नहीं भूल सकती। लीजिए यह अंगूठी। इसे अपने पास रख लीजिए। इस के प्रभाव से किसी तरह के हथियार आपको चोट नहीं पहुँचा सकेंगे।' यह कह कर उसने अंगूठी देनी चाही। मगर नीलकण्ठ ने लेने से इनकार कर दिया। वह बोला—'वीर का तो धर्म है कि जिस तरह हँसते हँसते वह वार करे, उसी तरह हँसते हुए उसे झेल भी ले। जो हमेशा वार करना ही चाहता है और दुश्मन का वार झेलना नहीं चाहता वह वीर नहीं। मैं कायर नहीं हूँ। मैं हमेशा धर्म-युद्ध करता हूँ।'

इतना कह कर राजकुमारी से विदा लेकर वह नज़दीक की नदी में स्नान करने गया। थोड़ी देर बाद राजकुमारी भी चुपके से नदी किनारे गई और अंगूठी उसके कपड़ों में छिपा कर वहां से लौट गई। नीलकंठ को बिल्कुल शक न हुआ।

दूसरे दिन जब नीलकंठ वन-दुर्ग पहुँचा तो वह योद्धा फरसा लिए खड़ा उसका इन्तज़ार कर रहा था। 'तुम अपनी बात के पक्के हो! तुम्हें देख कर मुझे बहुत खुशी होती है।' वह बोला।

नीलकण्ठ उसका वार झेलने के लिए तैयार खड़ा हो गया। 'भई! मैं तैयार खड़ा हूँ। वार करो।' उसने कहा।

उसकी बात सुन कर वह योद्धा खिल-खिला कर हँस पड़ा और बोला—'मानों

वार खाने के बाद भी तुम जिन्दा रहोगे! कितने भोले हो!' इतना कह कर उसने अपना फरसा उठाया और पूरे जोर से नीलकण्ठ की गरदन पर वार किया।

आश्चर्य! फरसा आधी दूर तक गरदन में धँस गया। मगर लहू की एक बूँद भी नीचे न गिरी। उस योद्धा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। साथ साथ नीलकण्ठ को भी कुछ कम आश्चर्य न हुआ। नीलकण्ठ ने यों ही फरसा निकाल लिया जैसे कुछ हुआ ही न हो।

वन-दुर्ग के योद्धा को अपनी आँखों पर आप ही विश्वास न हुआ। 'दगा! दगा!' कह कर वह फिर फरसा उठाने लगा। तब नीलकण्ठ ने भी तलवार निकाल ली।

इतने में वन-दुर्ग के महाराज और राजकुमारी भी वहाँ पहुँच गए। उन को देख कर दोनों प्रति-द्वन्दी लज्जित खड़े रह गए। नीलकण्ठ ने देखा तो यह वही राजकुमारी थी जिसे उसने लुटेरों से बचाया था। राजकुमारी ने भी उसे देखते ही पहचान लिया और बताया कि उसी ने वह जादू की अंगूठी उसके कपड़ों में छिपा दी थी, जिसके प्रभाव से वह उस योद्धा के फरसे का वार खाकर भी जिन्दा रह सका।

तब वन-दुर्ग के महाराज ने नीलकण्ठ की न्याय-शीलता और साहस को सराहा। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद उसने अपनी लड़की से उसका ब्याह बड़ी धूम-धाम से कर दिया। उस योद्धा ने भी नव-दम्पति को आशीर्वाद दिया। आखिर महाराज ने भेद खोल दिया कि उन्हीं ने उस विजय-दशमी के दिन उस योद्धा को इस विचित्र द्वन्द-युद्ध के लिए अलकापुर भेजा था। इस तरह उसे भेजने का मतलब ही था राजकुमारी के लिए एक सुयोग्य वर ढूँढ़ना। यह सुन कर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

मधुमक्खी क्यों काटती है ?

★

मधुमक्खी जब काटती है तो हमें बड़ी पीड़ा होती है। वास्तव में मधुमक्खी का डङ्क एक महीन, तेज़, कँटीली नली है जिसके जरिए मधुमक्खी काटती और जहरीले पदार्थ की एक बूँद छोड़ देती है। कार्मिक-मधुमक्खियाँ (याने छत्ते में काम करने वाली मधुमक्खियाँ) ही काटती हैं। बरों के बारे में भी यही लागू होता है।

मामूली तौर पर मधुमक्खियाँ या बरें एक ही बार काट सकते हैं; क्योंकि कँटीले होने की वजह से, और इसीसे काटे जाने पर हमें बड़ी पीड़ा भी होती है, डङ्क जल्दी बाहर निकाला नहीं जा सकता। ज्यादातर ऐसा हो जाता है कि जब कोई आदमी काटा जाता है तो वह चौंक कर हाथ से मारता और उस आक्रमणकारी कीड़े को दूर फेंक देता है। इसलिए डङ्क को धीरे से निकाल लेने का समय नहीं रहता और वह टूट जाता है। इसी से वह कीड़ा जिसका डङ्क होता है, घायल होकर मर जाता है। डङ्क निकाल लेने का मौका अगर मिले तो मधुमक्खियाँ या बरें बार बार काट कर हमारी नाकों दम कर सकते हैं।

मधुमक्खियों और बरों के डङ्क मौलिक रूप में उनकी रक्षा के साधन नहीं थे। किसी समय वे अंडकोश-संबंधी अंग थे। क्रमशः वे जहरीली सुइयों के रूप में परिवर्तित हो गए। इसीलिए कुछ मधुमक्खियाँ ऐसी भी देखी जाती हैं, जिनमें यह काटने के काम नहीं आता।

मधुमक्खियाँ बात बात पर आक्रमण नहीं करतीं; जब कोई उन्हें चिढ़ा कर गुस्सा दिलाता है तभी वे आक्रमण करती हैं। उनके डङ्क आत्म-रक्षा के साधन हैं।

किसी समय मारवाड़ में राजा गजसिंह का शासन चलता था। उनके बड़े लड़के का नाम अमरसिंह था। बाप-बेटे में बनती नहीं थी। इसलिए बाप ने बेटे को राज्याधिकार से वञ्चित कर दिया और देश-निकाला दे दिया। जिस दिन युवराज अमरसिंह राज से निकल जाने लगा, उस दिन सब को दुख हुआ। था वह जिद्दी स्वभाव का; मगर हृदय उसका अच्छा था। कुछ सैनिकों ने जो उसे बहुत प्यार करते थे, उसके साथ ही देश छोड़ दिया।

अमरसिंह ने सीधे जाकर शाहजहाँ के दर्शन किए। बादशाह ने उसको देखते ही जान लिया कि यह बड़ा बहादुर है। इसलिए खूब आव-भगत की और दरबार में एक बड़ा ओहदा भी दिया।

उन दिनों बादशाह कुछ दिन दिल्ली में रहते थे तो कुछ दिन आगरे में। उन्हीं दिनों अमरसिंह का बीकनेर के राजा से झगड़ा भी हुआ। यह बात बादशाह को मालूम हुई तो उन्होंने सोचा—'दोनों मेरे मातहत हैं। सुलह कराने में कोई मुश्किल न होगी।' मगर दरबार में अमरसिंह का प्रभाव बढ़ते देख उसके दुश्मन भी बहुत से हो गए थे। खुद बादशाह के साले सलाबतखान से उसकी नहीं बनती थी। फिर भी खुले-आम उसका विरोध करने का साहस किसी को न था। उसके दुश्मन ताक लगाए बैठे थे और मौके की राह देख रहे थे।

इस तरह दरबार में दो गुट बन गए थे, एक सलाबतखान का और दूसरा अमरसिंह का। अब कुछ चापलूस लोग धीरे-धीरे बादशाह के कान भरने लग गए थे। दिन दिन बादशाह उससे विमुख होता चला गया। इधर अमरसिंह ऐसा था कि अपनी ओर से कुछ नहीं कहता था।

कुमारी रूपा

एक बार बादशाह ने किसी बात पर गुस्से में आकर अमरसिंह पर नाहक जुर्माना लगा दिया और जुर्माना वसूल करने का काम अपने साले सलाबतखाँ को दिया।

अब तो घमण्डी सलाबतखाँ फूला न समाया। सोचा—'अब सारी कसर निकाल लूँगा!' एक दिन भरे दरबार में अमरसिंह को टोक कर पूछा—'बताओ! जुर्माना कब चुकाओगे?'

यह बात मानो अमरसिंह के कलेजे में बरछी की तरह चुभ गई। 'लो अभी चुका देता हूँ!' यह कह कर उसने झट तलवार म्यान से निकाल ली और एक ही वार में सलाबत का सिर धड़ से जुदा कर दिया। दरबार में सन्नाटा छा गया। बादशाह क्रोध से काँपने और अमरसिंह की निंदा करने लगा। लेकिन अमरसिंह बिलकुल न डरा। उसने बादशाह को मुँह-तोड़ जवाब दिया।

बस, बादशाह ने तैश में आकर अपने सिपाहियों को हुक्म दिया—'पकड़ लो इस गुस्ताख को!' शाही सिपाही अमरसिंह को पकड़ने आगे बढ़े। अमरसिंह चारों ओर से घिर गया। उसकी तलवार खुल कर खेलने और बारंबार बिजली की तरह कौंधने लगी। पल भर में वहाँ लहू के परनाले बह चले। घायलों की चीख-पुकार से सारा दरबार गूँजने लगा। दरबारी जान बचा कर भागने लगे। खुद बादशाह वहाँ से उठ गया। अमरसिंह को कैद करने का यत्न सफल नहीं हुआ।

पल में यह खबर सारे किले में फैल गई। लोग डर से थर-थर काँपने लगे। एकाकी अमर शेर की तरह झूमता हुआ वहाँ से चला गया। किसी को उसे रोकने का साहस न हुआ।

दूसरे दिन बादशाह ने सोने की थाली में बहुत से हीरे-जवाहरात भर कर उन पर एक बीड़ा रखा और भरे दरबार में उसे दिखा कर बोला—' जो अमरसिंह सिर काट लाएगा उसे यह ईनाम मिलेगा। है कोई जवाँमर्द जो बीड़ा उठाने की हिम्मत रखता है ? ' दरबारी सभी चुपचाप सुनते रहे। किसी को साहस न हुआ कि आगे बढ़ कर बीड़ा उठा ले। आखिर अमरसिंह के साले अर्जुन गौड़ ने आगे बढ़ कर धीरे से बीड़ा उठा लिया। बादशाह को विस्मय हुआ; लेकिन वह कुछ नहीं बोला।

दूसरे दिन अर्जुन गौड़ ने दोस्त की तरह अमरसिंह के घर जाकर उसे सलाह दी कि ' बादशाह से वैर मोल लेना ठीक नहीं। किसी न किसी तरह उनसे सुलह कर लेना ही अच्छा है।' अमरसिंह ने गुस्से के साथ कहा कि ' मैं उनके कदमों पर नाक रगड़ने नहीं जाऊँगा।' लेकिन अर्जुन गौड़ के बहुत समझाने-बुझाने पर उसने किसी तरह बादशाह के दर्शन करने के लिए जाना मंजूर कर लिया।

अर्जुन गौड़ को अच्छी तरह मालूम था कि अमरसिंह बड़ा अभिमानी है; वह किसी भी हालत में सिर झुकाना पसन्द नहीं करता। इसलिए अमरसिंह को महल में ऐसे दरवाज़े से ले जाने लगा जो बहुत छोटा था; और इसीसे अन्दर जाने के लिए सिर झुका कर जाना पड़ता था। अर्जुन गौड़ ने जो सोचा था, वही हुआ। अमर ने सिर झुका कर अन्दर जाने से इनकार कर दिया। तब गौड़ ने उसे बगल का एक झरोखा दिखाया और कहा—' इसमें से पैर पहले रख कर अन्दर उतर जाओ! इसमें तुम्हारी कोई हेठी नहीं होगी!' भोले अमर ने साले की बात सच मान ली। उसने

वैसे ही किया। उसने झरोखे में से अन्दर उतरने की कोशिश की। इधर गौड़ ने पीछे से उसकी पीठ में छुरा भोंक दिया।

अमरसिंह ने झट सारी बात ताड़ ली और तलवार चलाई। लेकिन गौड़ की सिर्फ नाक ही कट कर रह गई। उसने आसानी से अमरसिंह का सिर काट लिया और उसे एक थाल में रख कर बड़े गर्व के साथ बादशाह के सामने ले गया।

बादशाह ने जब सुना कि अमरसिंह की मौत किस तदबीर से हुई तो गौड़ के प्रति उसकी नफ़रत का ठिकाना न रहा। उसने हुक्म दिया—'इस पापी के मुँह पर कालिख पोत दो; गधे पर बिठा कर इसका जुलूस निकालो और शहर के बाहर ले जाकर इसका सिर काट लो!'

इधर अमरसिंह के मरने की खबर उसकी स्त्री हरिराणी ने सुनी। तुरन्त उसने सती हो जाने की सोची। लेकिन पति की लाश बादशाह के किले में पड़ी हुई थी। वह सती हो तो कैसे हो? उसे सोच में देख अमरसिंह के भांजे रामसिंह ने, जो अभी बच्चा ही था, कहा—'मैं जाता हूँ सिपाहियों के साथ और लाश ले आता हूँ।' लेकिन हरिराणी ने सोचा—'बादशाह की बेशुमार फौज के मुकाबिले में यह बच्चा अकेले क्या कर सकता है?'

आखिर जब कोई चारा नहीं सूझा तो उसने अपने देवर को चिट्ठी लिखने की सोची। पति जब जीवित थे तो इन दोनों में नहीं बनती थी। लेकिन ऐसी विषम घड़ी में कौन इन छोटी छोटी बातों की परवाह करता है! आखिर उसने चिट्ठी लिखी—'देवर! तुम्हारे भाई मुगलों के हाथ मारे गए और मुझको अनाथ और अकेली छोड़ गए। सती होना ही मेरी एक-मात्र आशा

है। लेकिन उनकी लाश बादशाह के किले में पड़ी हुई है। मैं सती होऊं तो कैसे? तुम वीर हो! जाओ, लाश को ले आओ और मेरे सिंदूर की लाज रख लो।'

चिट्ठी जब मिली तो भल्लूसिंह पशोपेश में पड़ गया। तब उसकी पत्नी बोली—'आप चूड़ी पहन कर घर बैठिए! मैं जाकर वह लाश ला देती हूँ!' ये वचन सुन कर भल्लूसिंह तिलमिला गया। वह तुरन्त पाँच सौ सिपाहियों के साथ रवाना हुआ। बालक रामसिंह भी साथ हो गया था। भल्लूसिंह ने अपने सिपाहियों से कहा—'मारवाड़ के राजवंश की मर्यादा आज तुम्हारे हाथों में है। वीरो! राजपूत कुल को कलङ्क न लगाना!'

तुरन्त उन वीर सिपाहियों ने जोश में आकर प्रण किया कि 'या तो वे अमरसिंह की लाश ले आएंगे या बादशाह के किले में ही मर मिटेंगे।'

इस तरह उस नगण्य सेना के साथ भल्लूसिंह और रामसिंह ने मुगल बादशाह के किले पर धावा बोल दिया और घुस कर उस जगह चले गए, जहाँ वह लाश पड़ी हुई थी। रामसिंह और भल्लूसिंह लाश को लेकर भाग चले। लेकिन तब तक बादशाह के सिपाही सतर्क होकर एकत्र हो गए थे। वे इनको घेरने की चेष्टा करने लगे। लेकिन राजपूत सैनिकों ने उन्हें उलझा रखा और इस तरह भल्लूसिंह और रामसिंह को भाग जाने का मौका दिया।

पीछे जितने राजपूत सैनिक रह गए थे, सब एक एक कर कट मरे; मगर मुगलों को पाँव आगे बढ़ाने न दिया। भल्लूसिंह और रामसिंह चन्द सिपाहियों के साथ लाश को लेकर सुरक्षित वापस लौट आए। हरिराणी निर्विघ्न सती हो गई। आज भी अमरसिंह की वीर-गाथा स्मरण करके लोगों का मन पुलकित हो जाता है।

नौ की करामात

```
                        1 2 3 4 5 6 7 9
                      9 9 9 9 9 9 9 9 9
                      -----------------
                      1 1 1 1 1 1 1 1 1
                    1 1 1 1 1 1 1 1 1
                  1 1 1 1 1 1 1 1 1
                1 1 1 1 1 1 1 1 1
              1 1 1 1 1 1 1 1 1
            1 1 1 1 1 1 1 1 1
          1 1 1 1 1 1 1 1 1
        1 1 1 1 1 1 1 1 1
      1 1 1 1 1 1 1 1 1
      ---------------------------------
      1 2 3 4 5 6 7 8 9 8 7 6 5 4 3 2 1
```

पिछले अंक में 'नौ की करामात' देख कर बहुत से पाठकों ने हमें इस बारे में लिख भेजा है। उन में से कुछ को चुन कर हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं।

(१) बगल में देखिए—नौ की संख्या से एक अजीब गुणा है। है न अजीब! यह अमलापुर की एक पाठिका ने भेजा है।

(२) १ से लेकर (८ को छोड़) 9 तक जितने अंक हों सब को एक कतार में लिखिए जो संख्या बन गई उसे 9 से या 9 से गुणा होने वाली किसी भी संख्या से गुणा कीजिए। जो फल मिलेगा उसका तमाशा जरा देखिए! उदाहरण लीजिए—

$$12345679 \times 9 = 111{,}111{,}111$$
$$12345679 \times 18 = 222{,}222{,}222$$
$$12345679 \times 27 = 333{,}333{,}333$$

इसी तरह ३६, ४५, ५४, ६३, ७२ और ८१ से गुणा करके देखिए। नौ की यह करामात और एक पाठक ने भेजी है जो अपना नाम देना नहीं चाहते।

(३) किसी भी संख्या को नौ से भाजन कर शेष जानने में एक विशेषता—उदाहरण के लिए ३३७८५ की संख्या लो। इन सब को जोड़ लो! याने ३+३+७+८+५=२६ इस संख्या को भी जोड़ लो। याने २+६=८. इस तरह तुम झट बता सकते हो कि ३३७८५ को नौ से भाजन करने पर ८ शेष रह जाएगा। इसी तरह किसी भी बड़ी संख्या को नौ से भाजन कर शेष बताया जा सकता है। संध्या देवी नाम की पाठिका ने यह करामात भेजी है।

पूरा करो !

*

नीचे दाईं ओर कुछ ऐसे शब्द दिए गए हैं जिन में हरेक के अंत में 'धर' आता है। समझ लो कि 'धर' के आगे जितने नुक्ते हैं उतने अक्षर वहाँ से गायब हैं। उन शब्दों को पूरा करो। पूरे शब्द का जो माने होता है वह बाईं ओर दिया गया है।

१. ओंठ	. धर
२. बादल	. . धर
३. किसान	. . धर
४. पहाड़	. . . धर
५. शिवजी	. . . . धर
६. तल्वार वाला	. . . धर
७. कृष्ण	. . धर
८. प्रवीण	. . धर
९. अच्छा हो	. धर

पूरा न कर सको तो जवाब के लिए ५६-वाँ पृष्ठ देखो !

बताओ तो ?

★

नीचे प्रश्नों की एक लड़ी दी जाती है। इस लड़ी के हर एक प्रश्न के उत्तर के आखिरी दो अक्षर उसके बाद के प्रश्न के उत्तर के पहले दो अक्षर होंगे। जैसे नीचे की लड़ी के पहले सवाल का जवाब है—'रत्नाकर।' अब दूसरे सवाल का जो जवाब होगा उसके पहले दो अक्षर 'क' और 'र' होंगे। यही अन्य प्रश्नों के बारे में भी लागू होता है।

१. रत्नों का घर या समुन्दर
२. ब्रह्माजी का एक नाम
३. वह मन्त्र जो मनुष्य को उद्धार दे।
४. सलाह-मशविरा करने का कमरा
५. एक-देश वासियों के बीच की लड़ाई
६. जिस की मौत आ गई हो।
७. तैयार

बता न सको तो जवाब के लिए ५६ वाँ पृष्ठ देखो !

रंगीन चित्र-कथा, छठा चित्र

यह विचित्र कथा सुनने के बाद कृपासेन को मालूम हो गया कि इतने दिन से जिस सफेद बिल्ली का वह मेहमान रहा था, वही यह भुवन-मोहिनी है। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसने सोचा कि यों उसके पिता की तीसरी ख्वाहिश भी पूरी हो गई।

कृपासेन और रत्नमाला उस जादू के महल में घूमने लगे। इतने में रत्नमाला के सेवक और सेविकाएँ भी शाप-मुक्त होकर उसको यह शुभ-समाचार सुनाने आईं। अपनी स्वामिनी को निज-रूप में देख कर उनको बहुत आनन्द हुआ। कृपासेन का चेहरा देखते ही वे सची बात भांप गए और खुशी से उछल-उछल कर जय-जयकार करने लगे।

उसके बाद दोनों सदल-बल वहाँ से निकले और सीधे कृपासेन के पिता के राज्य में पहुँचे। कृपासेन के दोनों भाई, कान्तिसेन और कमलसेन भी एक एक सुन्दरी को ले आए थे। लेकिन रत्नमाला के अपूर्व तेज के सामने उन दोनों की सुन्दरता बहुत फीकी लगती थी।

राज के सब लोग आपस में रत्नमाला की चर्चा और उसकी सुन्दरता की प्रशंसा करने लगे। राजा को भी उसे देखते ही मानना पड़ा कि वह संसार भर में सब से सुन्दरी है। उसने कृपासेन को भी बहुत सराहा और उन दोनों का विवाह बड़ी धूम-धाम से कर दिया। इतना ही नहीं; वह कृपासेन को राजा बनाने को भी तैयार हो गया।

लेकिन रत्नमाला सुन्दरी ही नहीं; बड़ी सुगुणशीला भी थी। उसने कहा कि बाकी दोनों राजकुमारों का भी ब्याह करके राज्य में उनको भी बराबर हिस्सा देना चाहिए।

उसका प्रस्ताव उचित था। राजा ने वैसा ही किया। तीनों भाई आपस में हिल-मिल कर बड़े सुख से रहने लगे। बूढ़ा राजा राज-काज से अलग होकर भगवान के ध्यान में अपने दिन बिताने लगा।

चन्दामामा पहेली

बायें से दायें :

1. काव्य
4. मुर्गी
6. हमारा देश
8. बात
9. हाथ
10. अपनी जगह
11. रंग
13. पाप
14. वैभव भरा
17. एक बाजा
18. पैरों का रंग

ऊपर से नीचे :

2. प्रात
3. धातु का धागा
4. महादेव
5. किसान
7. निरपेक्षभाव
12. सूरज
13. सागर
15. नम्र
16. आराधना

बिल्लीराम की काशी-यात्रा

पुण्य कमाने का विचार करके बिल्लीरामजी काशी-यात्रा करने चले। राह में एक गिलहरी और एक छिपकली साथ हो लीं। लेकिन गजब यह हुआ कि थोड़ी दूर जाने के बाद वे दोनों गायब हो गईं। अब बिल्लीरामजी बहुत अफ़सोस करने और सोचने लगे कि 'यह कैसी बला मेरे सिर पड़ गई !' बच्चो ! क्या तुम बता सकते हो कि गिलहरी और छिपकली का क्या हुआ? बता सको तो बेचारे बिल्लीराम की जान में जान आ जायगी !

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

सितम्बर १९५३ :: पारितोषक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें ।

ऊपर के फोटो सितम्बर के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर-सम्बन्धित हों। परिचयोक्तियाँ, पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर १० जुलाई के अन्दर ही निम्न-लिखित पते पर भेजनी चाहिए ।

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास-२६.

अगस्त - प्रतियोगिता - फल

अगस्त के फोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनकी प्रेषिका को १०) का पुरस्कार मिलेगा ।

पहला फोटो : राष्ट्र-प्रदीप   दूसरा फोटो : राष्ट्र-प्रतीक

प्रेषिका :— श्रीमती विमला प्रधान, ८-ई, बेरन रोड, नई देहली.

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ प्रेषिका के नाम-सहित अगस्त के चन्दामामा में प्रकाशित होंगी। उक्त अङ्क के प्रकाशित होते ही पुरस्कार की रकम भेज दी जाएगी ।

आँधी आई !

[श्री अशोक बी. ए.]

आँधी आई, आँधी आई !
मोटे-मोटे झाड़ गिराए ।
देखो, घर के टीन उड़ाए ।
छप्पर के खपरैल ढहाए ।
पेड़ों से फल-फूल गिराए ।
अपने साथ धूल भी लाई ।
धूम-धाम से आँधी आई ।

छप्पर उड़ कर कहीं पड़े हैं ।
खपरलों के ढेर पड़े हैं ।
चौखट और किवाड़ लड़े हैं ।
जहाँ-तहाँ फल-फूल गिरे हैं ।
सबने हाहाकार मचाई ।
आँधी आई, आँधी आई ।

चौपाए सब भाग रहे हैं ।
भय से सारे काँप रहे हैं ।
शरण सभी से माँग रहे हैं ।
सब अपने मुख ढाँक रहे हैं ।
जीव-जन्तु की हुई सफ़ाई ।
आँधी आई, आँधी आई ।

चारों तरफ़ अँधेरा छाया ।
सूरज ने मुख आप छिपाया ।
बच्चों ने भी शोर मचाया ।
समझ न पड़ती है यह माया ।
आँधी है सब को दुखदाई ।
आँधी आई, आँधी आई ।

चन्दामामा पहेली का जवाब :

क	वि	ता		शि	क	न
	भा	र	त	व	र्ष	
श	त		ट		क	र
		स्व	स्थ	ल		
न	म		भा		अ	घ
	वि	भ	व	पू	र्ण	
सि	ता	र		जा	व	क

'पूरा करो' का जवाबः–

१. अधर २. जलधर ३. हलधर
४. धरणीधर ५. जटाजूटधर ६. फणाधर
७. गिरिधर ८. धुरंधर ९. मुधर

'बताओ तो' का जवाबः–

१. रत्नाकर २. करतार ३. तारकमन्त्र
४. मन्त्रणागृह ५. गृहसंसार
६. मरणासन्न ७. सन्नद्ध

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26 and Published by him from Chandamama Publications, Madras 26. Controlling Editor: SRI CHAKRAPANI

Photo by J. V. Sivarama Sastry
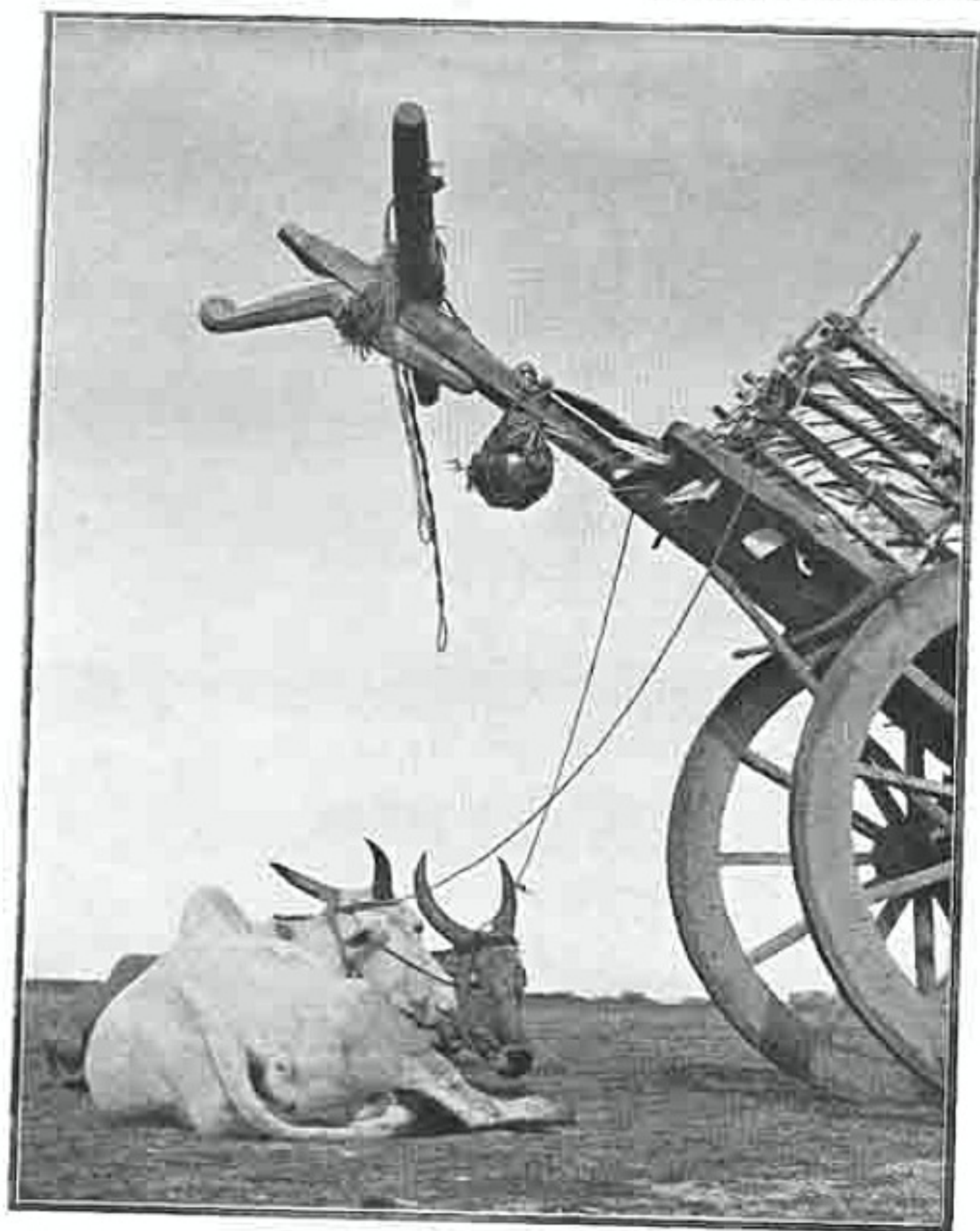
पुरस्कृत
परिचयोक्ति

धूलि-धूसर

प्रेषिका
सरोजिनी गुलाटी, देहली

रङ्गीन चित्र - कथा, चित्र — ६